वर्ष ७, अंक ११

श्रीकृष्णाय नमः

श्रावण पूर्णिमा १९९०

वार्षिक चन्दा २)

सम्पादक—
म० कृष्णानन्द, भूमानन्द

एक प्रति ।)

विषय सूची

नं०	लेख लेखक	पृष्ठ
१.	वेदोपदेश	३२१
२.	भगवद्भक्ति [ले० श्री पूज्य स्वामी भोले बाबा जी	३२२
३.	राम नाम (कविता) (रचयिता श्रीगंगाविष्णु पाण्डेय	३३१
४.	आत्मानुभूति (ले० श्री महात्मा राम	३३१
५.	सब सुखों का आदि स्रोत (ले० प्रभुदेव ब्रह्मचारी आश्रम	३३५
६.	प्रेम प्रादुर्भाव के लक्षण [ले० भक्तरत्न मथुराप्रसाद जी	३३७
७.	अनुरोध (कविता) (ले० प्रभुदेव ब्रह्मचारी आश्रम	३३६
८.	महात्मा शाह जलाल उद्दीन बसाली (ले० श्री यमुनाप्रसाद जी श्री वास्तव	३३६
९.	महात्मा रामकृष्ण परमहंस के सदुपदेश (ले० पं० मोहनशर्मा सम्पादक मोहिनी ...	३४४
१०.	आओना मोहन (कविता) (रचयिता श्रीमती ब्रजकुमारी आश्रम	३४७
११.	योग साधन (ले० श्रीस्वामी शिवानन्द जी	३४७
१२.	भजन	३५१

REG DNo. L 2077

भक्ति प्रेस में मिलने वाली पुस्तकें।

१. भगवद्गीता संस्कृत तथा भाषा टीका सहिता	मूल्य	॥=)
२. भगवद्गीता दशम अध्याय पर्यन्त ...	"	।-)
३. गीता मूल (मोटा टाइप)	मूल्य नित्य पाठ	
४. वेदोपनिषद्		।-)
५. अष्टोत्तरशतमन्त्रमाला	"	-)।
६. ज्ञानधर्मोपदेश	"	-)॥।
७. भक्ति ज्ञान योग संग्रह	"	=)॥
८. सत्य शब्द संग्रह (गुटका)	"	।)
९. सत्य शब्द संग्रह	"	॥=)
१०. शब्द सदाचार संग्रह	"	-)॥।
११. शब्द सार संग्रह	"	-)।
१२. शब्दसंग्रह	"	-)॥
१३. सारसंग्रह	"	।)
१४. भाषा फक्किका प्रकाश	"	।=)
१५. मनुस्मृति सार	"	≡।
१६. भक्ति चिन्तामणि	"	।≡)
१७. भगवद्भक्तांक	"	॥=)
१८. भगवदंक	"	॥।)
१९. गत्रांक	"	१।)
२०. महात्मांक	"	१)

नोट:-एक रुपये से कम मूल्य की पुस्तक मंगाने वालों को डाक महसूल सहित टिकट भेजने चाहिये।

मिलने का पता:-

श्री भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी।

मुद्रक तथा प्रकाशक प्रेमानन्द ब्रह्मचारी "भक्ति प्रेस" भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी।

गान्धारीका शाप

GITA PRESS, GORAKHPUR.

जनता में भगवद्भक्ति भाव को जाग्रत करने वाली सचित्र मासिक पत्रिका ।

वर्ष ७ } श्री भगवद्भक्ति आश्रम रेवाड़ी, श्रावण पूर्णिमा, अगस्त १९३३ { अंक ११ पूर्ण संख्या ८३

वेदोपदेश

सपर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरं शुद्धमपापविद्धम् ।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान्व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥

वह सर्व व्यापक है, दीप्ती मान है, लिङ्ग शरीर रहित है शिरा वर्जित है, अविद्या मल रहित है, धर्माधर्मादि पाप शून्य है, सर्व द्रष्टा है, मन का देपिता है नाना रूपों कर के सब ओर होता है स्वयं ही होता है निरन्तर अनादि काल से याथातथ्यतः पदार्थों को कल्पना किया है ॥

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् ।
तत्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये ॥

हे जगत् पोषक ! बाध रहित तेरा मुख हिरण्य मय पात्र से ढका हुवा है । उस मुखपिधायक चमकदार वस्तु को हम से दूर कर जिस से हम तेरा सत्य धर्म जानें और देखें ॥

वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्त ॐ० शरीरम् ।
क्रतोस्मरकृत ॐ० स्मर क्रतोस्मरकृत ॐ० स्मर ॥

मरण काल में प्राण वायु बाहर की वायु को प्राप्त होवे स्थूल देह अग्नि में भस्म रूप होवे। हे संकल्प रूप ! तू ओंकार को स्मर और अपने कर्म स्मर ॥

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।
युयोध्यऽस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठांते नम उक्ति विधेम ॥

हे अग्ने ! हम को कर्म फल भोग के लिये । अच्छे मार्ग से ले चल हे देव ! हमारे सम्पूर्ण ज्ञान और कर्मों को जनते हुये हम से कुटिल पाप को दूर कीजिये इस लिये हम आप को अधिक तर नमस्कार करते हैं ॥

केनषितं पतति प्रेषितं मनः केन प्राणः प्रथमः प्रैति युक्तः ।
केनेषितां वाचमिमां वदन्ति चक्षुः श्रोत्रं कउ देवो युनक्ति ॥

किस करके पेरित हुआ मन जाता है। किस करके प्राण प्रथम प्रैति युक्त होते हैं । किस से प्रेरित इस वाणी को बोलते हैं चक्षु श्रोत्र को कौन देव नियुक्त करता है ॥

भगवद्भक्ति

[ले० श्री पूज्य स्वामी भोले बाबा जी]

कथा करमैती जी की ।

करमैती जी पं० परशुराम की बेटी थीं। इनके पिता कांडिले ग्राम में रहते थे और राजा शिवदत्त के पुरोहित थे। कलियुग जो हजारों कलंक और पीडाओं से भरा हुआ है, करमैती जी के निकट नहीं आया। इन्होंने अनित्य पति को छोड़ कर नित्य निर्विकार पति कृष्ण महाराज से प्रीति जोड़ी और संसार की सब फांसियां तृण के समान तोड़ कर वृन्दावन में वास किया। इन के पिता परशुराम के धन्य भाग हैं, जिनके घर ऐसी लड़की जन्मी, जिसकी बड़ाई और भक्ति सब भक्तों ने वर्णन करी है। श्रीकृष्ण महाराज की छबि पर करोड़ों कामदेव निछावर होते हैं ऐसे कृष्ण महाराज में इन्होंने अपना चित्त ऐसा लगाया कि उसी छवि के चिन्तन और ध्यानमें मग्न रहती और

ध्यान के सुख से ऐसा आनन्द और स्वाद लेतीं कि शरीर में न समातीं। संसार के सब काम फीके हो गये थे।

जब करमैती का पति गवना लेने के निमित्त आया, तो माता पिता ने गहने और कपड़े की अच्छी तैयारी की, इनको शोच हुआ कि यह तन भगवद्भजन के हेतु है, विषय भोग सुख लेने के लिये नहीं है, ऐसा विचार कर इन्होंने देहत्याग की इच्छा की, फिर शोचा कि भगवत् की प्रीति और भजन सब अर्थों से मुख्यतर अर्थ है और जगत् की प्रीति और सम्बन्ध सब अनित्य हैं, शरीर बिना भगवद्भजन नहीं हो सका, इसलिये देह का त्याग उचित नहीं है, मात्र भजन के विरोधियों का त्याग योग्य है, ऐसा मन में निश्चय करके जिस रात के सवेरे को गवना था, उसी रात को आधी रात बीतने पर भगवत् की छबि में छकी हुई और उसी ध्यान रूपी रूप के साथ निर्भय अकेली घर से निकल कर चल खड़ी हुई। प्रभात को आदमी चारों ओर ढूँढने को दौड़े, आदमियों को आता देख कर यह एक मरे ऊँट के कंकाल में घुस कर छुप गयीं। कलियुग के पापों की दुर्गन्ध के समान मरे ऊंट की दुर्गन्ध नहीं तुल सकी, इस कारण से उसकी दुर्गन्ध इनको जान पड़ी, सिवाय इसके भगवत् के श्रृंगार के अतर इत्यादि की सुगन्ध जो मन, प्राण और मस्तक में समायी हुई थी, उसके कारण से भी दुर्गन्ध का कुछ विकार न हुआ, तीन दिन उसी कंकाल में छुपी रहीं, तीन दिन बीते उसमें से निकल कर एक मेला गंगा नहाने को जाता था, उसके साथ गंगा जी पर आयीं, वहाँ स्नान करके सब गहने दान कर दिये। फिर मथुराजी में आयीं यहाँ स्नान किया, यात्रा करी, वहां से वृन्दावन में ब्रह्मकुण्ड पर निवास करके भगवत् के चिन्तन और ध्यान में रहने लगीं।

इनके पिता परशुराम ढूंढते २ मथुरा जी में पहुंचे, एक मथुरावासी चौबे से पता पाकर वृन्दावन में गये। उन दिनों इतनी आबादी, कुञ्ज और बाग इत्यादि नहीं थे, बन सघन था, और हरियाली बड़ी थी। इनके पिताने एक बरगद के वृक्ष पर चढ़ कर देखा कि करमैती जी भगवत् ध्यान में विराजमान हैं। वृक्ष पर से उतर कर वह इनके पास आया, अत्यन्त स्नेह से रोता कलपता चरणों में लिपट गया और कहने लगा: हे बेटी! तुम्हारे चले आने से मेरी नाक कटगई, भाई बन्धु कलंक लगाते हैं और बोल मारते हैं, अब घर को चलो, अपनी सुसराल में जाकर भगवद्भक्ति, सेवा, पूजा किया करो, यह बन है, कोई जन्तु तुमको खा जायगा, हम को दुःख होगा, तुम्हारी माता मरने को बैठी है, उसको जिलाओ।

पिता की स्नेह भरी बातें सुन कर करमैती जी इस प्रकार कहने लगीः-

करमैतीजी-हे पिता! जिस तन में भगवद्भक्ति नहीं है, वह तन मृतक प्राय है, यदि जीने की इच्छा हो, तो भगवद्भक्ति करनी चाहिये और यह जो कहते हो कि नाक कट गयी तो नाक पहिले से ही तुम्हारे मुख पर न थी, क्योंकि मुख्य नाक भगवद्भजन और भक्ति है, बिना उसके हजारों नकटे हैं। शोच करो कि पचास वर्ष की तुम्हारी अवस्था संसार के विषय विलास में बीत गई, अब तक तृप्ति न हुई, अब भी मोह रूपी नींद से जाग जाओ, क्योंकि सब भोग विलास तुच्छ और अनित्य हैं, भगवत् का भजन सार है, सब बखेड़ा छोड़ कर भगवत् में ही मन लगाओ।

हे मंसाराम! इस थोड़े से उपदेश से ही परशुराम का अज्ञान इस प्रकार दूर हो गया जिस

प्रकार सूर्य के उदय होने से अन्धकार का नाश हो जाता है। पश्चात् करमैती जी ने एक भगवत् मूर्ति सेवा के निमित्त देकर पिता को बिदा किया। परशुराम घर आया और भगवत् मूर्ति विराजमान करके उसने उसमें ऐसा मन लगाया कि सिवाय सेवा और भजन के दूसरी ओर तनिक भी दृष्टि न रही और उसने लोगों के यहाँ आना, जाना बोलना चालना सब छोड़ दिया।

एक दिन राजाने लोगों से पूछा कि परशुराम ब्राह्मण बहुत दिनों से हमारे पास नहीं आता, उसका क्या समाचार है। किसी मनुष्य ने सब वृत्तान्त भक्ति और भजन का विस्तार से वर्णन किया। यह सुन कर राजा ने मनुष्य बुलाने को भेजा, तो परशुराम ने कहा कि अब राजा से कुछ काम नहीं है, मनुष्य तन पाकर जो काम करना चाहिये, उसमें लगा हुआ हूं, राजा परशुराम की भक्ति और वैराग्य को विचार करके आप दर्शनों के निमित्त गया और उनकी भगवत् में सच्ची प्रीति देख कर और करमैती जी की भक्ति और वैराग्य का वृत्तान्त सुन कर प्रेम से विह्वल हो गया। इच्छा हुई कि करमैती जी का दर्शन करना चाहिये, यदि मेरे अच्छे भाग्य हों, तो क्या आश्चर्य है कि आवें और देश को पवित्र करें, इस आशा से राजा वृन्दावन गया, वहां जाकर उसने देखा कि नन्द-नन्दन महाराज की निश्चल और दृढ़ प्रीति में करमैती जी इस अवस्था को पहुंच गयीं हैं, कि कुछ कहने सुनने का वार ही नहीं आया, उस दशा में चलने के निमित्त अधिक बात चीत न कर सका, और करमैती जी के मने करने पर भी एक कुञ्जकुटी बनवा कर चरणों को दण्डवत् करके चला आया और भगवद्भजन में लग गया। अब तक वह कुटी ब्रह्मघाट पर विद्यमान है।

कुं—करमैती की कथा का, यह ही निकलता सार।
ईश भजन ही सार है, विषय भोग निस्सार॥
विषय भोग निस्सार, जान प्यारे सब तजिये।
भगवत् केवल सार, प्रेम से निश दिन भजिये॥
भोला! शुभ सन्तान, तारि कुल भर कूं देती।
परशुराम पितु तारि, तरी बेटी करमैती॥

कथा नरसी जी की।

नरसी जी महाराज का गुजरात देश में और ऐसे कुल में जन्म था कि जहां स्मृति धर्म के सिवाय भगवद्भक्ति का पता तक न था और यदि किसी को तिलक छापे लगाये हुए देखते थे, तो उसी की निन्दा करते थे। यह ऐसे परम भागवत हुए कि उस देश के पापों को दूर करके इन्होंने सब को भगवद्भक्त बना दिया। शृंगार और माधुर्य की उपासना में इनको गोपिकाओं के तुल्य कहना चाहिये। यह जूनागढ़ के रहने वाले थे। जब इनके मा बाप मर गये, तो यह भाई भावज के यहां रहने लगे। एक दिन बाहर से खेलते हुए घर में आये और भावज से पानी मांगने लगे, तो उसने अपनी दुष्ट प्रकृति के कारण से क्रोध करके उत्तर दिया कि ऐसी ही कमायी करके लाया है, जो पानी पिलाऊं। नरसी जी को लज्जा के मारे जीना भारी हो गया और वे शिवजी सेवा में गये, सात दिन तक बिना अन्न जल शिवालय में पड़े रहे। शिवजी महाराज ने विचार किया कि संसारी मनुष्य भी अपने द्वार पर पड़े हुए की रक्षा करता है और मैं तो जगत् का ईश्वर हूं, ऐसा विचार कर शिव जी ने साक्षात् दर्शन दिये और कहा कि जो इच्छा हो, सो मांगले। नरसी ने विनय किया कि मुझे मांगना नहीं आता, जो कुछ आपको प्रिय हो, सो दीजिये।

शिवजी विचारने लगे कि मुझ को वह प्रिय

है, जिसको वेद भी नेति २ कहते हैं, और जिसका भेद मैंने अपनी प्रिया पार्वती जी को भी ठीक २ नहीं बताया, इस मनुष्य को तुरन्त कैसे बतला दूं, फिर अपने वचन देने को और इस बात को विचार कर कि इस मनुष्य के प्रभाव से एक देश कृतार्थ हो जायगा, शिवजी नरसी का सखी रूप बनाकर वृन्दावन में आये और देखा कि सब भूमि कंचन मयी, रत्न जटित है, उसके बीच रासमंडल है, रासमंडल में असंख्य गोपिकाओं के बीच में सिंहासन है सिंहासन पर प्रिया प्रियतम विराजमान हैं, शोभा की चाँदनी से किरोड़ों चन्द्रमाओं की चाँदनी फीकी दिखायी पड़ती है, रास विलास हो रहा है, ताल देकर कभी आप लाल जी प्रिया जी को संगीत की गति सिखाते हैं। कभी प्रियाजी प्रियतम को संगीत सिखाती हैं, कभी दोनों परस्पर गलबाँही देकर नृत्य करते हैं और कभी हाथ पकड़ कर गान करते हैं, कभी दूसरी गोपिकाओं के नृत्य और गान पर सावधान हैं, कभी हंसी ठट्ठा होता है, पखावज वीणा आदि सब प्रकार के बाजे मिले हुए ताल स्वर से बजते हैं, छहों राग रागनियों सहित सखी रूप से खड़े हैं। नरसी जी यह समाज देख कर कृतार्थ हो गये, उसी घड़ी दुःख सुख से अलग हुए और शिवजी की आज्ञा से मशाल दिखाने लगे। ब्रजकिशोर महाराज ने प्रिया जी से कहा कि आज यह कोई नई सखी आई है, प्रियाजी ने उत्तर दिया कि शिव जी के साथ है। तब नटनागर महाराज ने मन्द मुसुकान और कृपा दृष्टि से नरसी जी की ओर देखा और फिर प्रिया जी ने भी वचन से सहायता की, तब आज्ञा हुई कि अब तुम जाओ, जो देखा है, उसी का ध्यान और चिन्तन करते रहो, जहां बुलाओगे, तहां तुरन्त आऊंगा।

नरसी जी भगवत् आज्ञा पाकर परम आनन्द में मग्न अपने घर आये, अलग एक घर बना कर उसी समाज के मध्य में रहने लगे। एक ब्राह्मण की लड़की से इनका विवाह हो गया और उसी से एक बेटा हुआ और दो लड़कियां हुईं। इन्होंने संसार में प्रेमाभक्ति को विख्यात किया। जो साधु आते, उनकी सेवा यह भली प्रकार किया करते और रात दिन भगवद्भजन के सिवाय दूसरा कार्य नहीं करते थे। ऐसा देख कर इनके सजातीय ब्राह्मण द्वेष करके इनसे शत्रुता करने लगे, परन्तु नरसी जी तो भगवद्रूप के समुद्र में मग्न थे और भगवत् उनकी रक्षा और सहाय करने को तैयार रहते थे, इस कारण से वे लोग इन का कुछ न कर सके।

एक बार साधु आकर उतरे और लोगों से पूछने लगे कि हम को द्वारका की हुंडी करानी है। क्या कोई साहूकार यहां है। लोगों ने कुत्सा और ठट्ठे की राह से नरसी जी को बता दिया और समझा दिया कि यदि वे न मानें, तो तुम चरण पकड़ लेना और बहुत विनय प्रार्थना करना। साधु आये और सात सौ रुपये नरसी जी के आगे रख कर चरण पकड़ने लगे, नरसी जी नाहीं करने लगे, तो हाथ जोड़ २ कर प्रार्थना करने लगे। नरसी जी समझ गये कि किसी के बहकाने से आये हैं अथवा भगवन् ने शत्रुओं के हृदय में प्रेरणा करके यह खर्च भिजवाया है, यह सोच कर उन्होंने तुरन्त हुंडी लिख दी और समझा दिया कि जिसके नाम हुंडी है, उसका नाम सांवल साह है, उसीके हाथ में देना।

वे साधु द्वारका में आये, उस साहूकार को ढूँढने लगे, तो उन्हें कहीं पता न मिला, बिचारे भूख प्यास से विकल होकर नगर से बाहर आये और विचारने लगे कि भोजन प्रसाद से छुट्टी पाकर

फिर साहूकार की खोज लगावेंगे। साँवल साहने विचार किया कि बिना पक्के खोजी के मेरा मिलना कठिन है परन्तु यदि इनको ढूंढने का अधिक कष्ट देता हूं, तो मेरी गुमास्तगीरी और नरसी जी की साहूकारी में बट्टा लगता है, ऐसा विचार कर बड़ी पगड़ी, लम्बी धोती, नीचा जामा पहिन, कमर बांध, कलम कान पर रख, एक बही बगल में दबा, साहूकार का रूप बना, एक थैली रुपयों की कंधे पर धर, जहां साधु टिके थे, वहाँ आये और पूछने लगे कि नरसी जी की हुंडी कौन लाया है? साधु लोगों के तन में मानो प्राण आ गये, सब एक बार ही बोलने लगे कि महाराज! हम लाये हैं, आपको ढूंढतेर हार गये, आप ने बड़ी कृपा करी कि आप ही आगये। साहूकार ने कहा कि भाई! मुझे क्यों लजाते हो, मैं तुम को कई दिन से ढूंढ रहा हूं। नगर में मेरा पता जो नहीं लगा, उसका कारण यह है कि जो भगवत् का निज दास है, वह ही मुझ को जानता है। साधों ने हुंडी दी और सांवलसाह ने नकद रुपया देकर नरसी जी के नाम जवाब लिख दिया कि चिट्ठी आयी, रुपये रोकड़ दे दिये, मुझको अपना गुमास्ता जान कर काम काज लिखते रहना। साधु लोग यात्रा करके फिर नरसी जी के पास आये और चिट्ठी दी। नरसी जी ने पूछा कि सांवलसाह को देख आये। साधों ने कहा, हाँ! महाराज! देख आये। नरसी जी अति प्रेम से मिले और साधों को जो,यह वृत्तान्त मालूम हुआ, तो वे भी प्रेम में रंग गये। नरसी जी ने वह सब रुपया साधु सेवा में खर्च कर दिया, क्योंकि साहू का रुपया अवश्य देना है, उसके पास कोई पहुंच नहीं सका, सिवाय साधु सेवा के दूसरा उपाय रुपया पहुंचाने का नहीं है।

नरसी जी की बड़ी लड़की के लड़का उत्पन्न हुआ, नरसी जी के घर से छूछक की सामग्री नहीं गई, सास आदिक नित्य बोली मारती और गालियां दिया करती थीं, उस लड़की ने नरसी जी को कहला भेजा कि इस सास ने मुझ को यातना में डाल रक्खा है, यदि तुम से कुछ दिया जाय, तो ले आवो नरसी जी पुरानी गाड़ी में थके हुए दुर्बल बैल जोड़ कर, उस पर बैठ कर उस नगर के किनारे पहुंचे। लड़की ने कंगाली की दशा देख कर नरसी जी से कहा कि यदि तुम्हारे पास कुछ न था, तो किस लिये आये! नरसी जी ने कहा कि चिन्ता का कुछ प्रयोजन नहीं है, अपनी सास पै जा कर छूछक का जो समान चाहिये, सो एक कागज पर लिखाला। सासने क्रोध करके सारे नगर के लिये पहिरने का सामान और गहना लिख दिया। जब नरसी जी की लड़की फर्द लेकर आयी, तो नरसी जी ने फिर भेजी कि यदि किसी के निमित्त कुछ और बाकी रह गया हो, तो वह भी लिख कर भेज दो, सास ने रिस करके लिखा दिया कि दो पत्थर भी भेज देना।

पीछे एक पुराने और टूटे दालान में इनको टिका दिया गया और नहाने के लिये ऐसा उष्ण जल भेजा कि हाथ न लगाया जाय। भगवत् इच्छा से मेह बरसा और जल शीतल होगया, नरसी जी ने यथेष्ट स्नान किया और उस दालान की एक कोठरी में बैठ कर, द्वार पर एक परदा डाल कर भगवत् कीर्तन आरंभ किया। भगवत् आप रुक्मिणी सहित, कागज पर लिखा हुआ सब सामान लेकर कोठरी में आये। रुक्मिणी को साथ लाने का कारण यह था कि पुरुष के शृंगार और पोशाक का सामान तो मेरे अधीन है और स्त्रियों के सामान में जो कुछ भेद पड़ेगा, सो उस का दोष रुक्मिणी जी का समझा जायगा।

मंसाराम-महाराज! नरसी जी तो शृंगार उपासक थे, उचित यह था कि उनके इष्टदेव नन्द-नन्दन महाराज और राधिका महारानी आकर विराजमान होते, रुक्मिणी जी और द्वारकानाथ महाराज क्यों आये ?

मस्तराम-भाई! नरसी जी ने प्रिया प्रियतम के सुख समाज में विक्षेप डालना उचित न समझा इसलिये द्वारकानाथ और रुक्मिणी जी का स्मरण किया था, दूसरे यह कि भगवत् ने विचारा कि यह कार्य शृंगार के सम्बन्ध का नहीं है, गृहस्थी धर्म के सम्बन्ध का है, इसलिये विवाह, पचना, छूछक, भात इत्यादि सब कार्य, जिसने किया हो, उसी रूप से चलना चाहिये, इसलिये द्वारकानाथ और रुक्मिणी के रूप से प्रकट हुए।

पश्चात् नगरवासियों को वस्त्राभूषण बांटने लगे और ऐसा सामान बांटा कि किसी ने आंख से नहीं देखा था, सब से पीछे सोने चांदी के दो पत्थर दिये। सारे नगर और देश में नरसी जी का ऐसा यश हुआ कि अब तक साधु समाज में गाया जाता है। पीछे नरसी जी घर का चलने लगे। एक स्त्री का नाम कागज पर नहीं चढ़ा था, छूट गया था, उसको नरसी जी की लड़की अपना पोशाक देने लगीं। उसने आग्रह किया कि जिसके हाथ से सब ने लिया है, उसी के हाथ से लेऊंगी। नरसी जी ने अपनी लड़की के संकोच से दुबारा भगवत् को बुलाया और उसको भी सब असबाब दिया। इस दान से नरसी जी की लड़की इतनी प्रसन्न हुई कि शरीर में फूली न समाई और अपने बाप की भक्ति देख कर अपने पति आदि का त्याग करके नरसी जी के साथ चली आयी और भगवद्भजन में लग गयी। दूसरी लड़की ने विवाह ही नहीं कराया था, वह भी भगवद्भक्ता हो गई।

जूनागढ़ में जहां नरसी जी का घर था, वहां दो गाने वाले गाते फिरते थे, उनको कहीं एक कौड़ी नहीं मिली। किसी ने नरसी जी का नाम बता दिया कि उनके घर से तुमको बहुत कुछ मिलेगा। वे आकर नाचने गाने लगे। नरसी जी ने समझा दिया कि हम फकीर हैं, हम से क्या चाहते हो। चले जाओ। उन्होंने न माना। नरसी जी ने कहा कि यहां केवल भगवद्भक्ति साक्षात् है, यदि तुमको उसकी चाह हो, तो मूंड मुंडा कर आ जाओ। उन्होंने तुरन्त शिर मुंडा लिया और वे नरसी जी की समाज में मिल गये। नरसी जी की दोनों लड़कियां और दोनों गायक प्रेम और भक्ति से भगवत् का भजन और कीर्तन करके भगवद्भक्ति और प्रेम के परमानन्द देने वाले भावों को प्रकट किया करते थे। नरसी जी का मामूं शाह लगता में जूनागढ के राजा का दीवान था, उसको नरसी जी का आचरण अच्छा न लगा, उसने इनको मिथ्या पाखंडी बता कर राजा को इस बात पर सन्नद्ध कर दिया कि दण्डी साधु और ब्राह्मणों का समाज करके नरसी जी को इस नगर और देश से निकाल देना चाहिये कि लोगों को पाखण्ड में न भुलावे।

राजा ने चार चोबदार नरसी जी को ले आने के लिये भेजे। नरसी जी ने अपनी लड़कियों और दोनों गायनों से कहा कि तुम लोग कहीं अलग हो जाओ, मैं राजा के पास जाता हूं, उन लोगों ने कहा कि राजा का क्या डर है, हम भी साथ हैं। सब भगवत् कीर्तन करते हुए राजा की सभा में आये। सब सभा वालों के मुख की श्री नरसी जी के प्रताप से जाती रही परन्तु एक पंडित ने पूछा कि स्त्रियों को साथ रखना किस पद्धति में लिखा है। नरसी जी ने उत्तर दिया कि सब शास्त्र

पुराण और वेदों का सार भगवद्भक्ति है, जिस किसी को भक्ति प्राप्त हुई, वह परम भागवत् और भगवद्रूप है, क्या स्त्री हो, क्या पुरुष, और उसका एक निमिष का सत्संग भगवद्भक्ति का देने वाला है। भगवत् ने श्रीमुख से आप मथुरावासिनी स्त्रियों की श्लाघा की है और उनके पति मथुरा के ब्राह्मणों ने उनके भाग्य की बड़ाई करके कहा है कि ये स्त्रियां परम बड़भागिनी हैं कि इन्होंने भगवत् का दर्शन पाया और हमारी सर्वज्ञता और हमारे वेद पढ़ने को धिक्कार है कि भगवत् विमुख हैं। भागवत् में लिखा है कि वही बड़ा है और वही मुक्ति के योग्य है, वही सत्संगी है और वही सेवा करने योग्य है कि जिसको भगवद्भक्ति है। फिर भगवत् का वचन है कि मैं भक्ति के वश में हूं, एकादश स्कन्ध में भगवत् का वचन है कि मेरा भक्त जो श्वपच भी है, तो भी उन बड़े कुलीनों से बड़ा है, जो भगवद्भक्त नहीं हैं, इसलिये जिस किसी को भगवद्भक्ति प्राप्त हुई है, उसको स्त्री, पुरुष, छोटी जाति या बड़ी जाति कहना शास्त्र विरुद्ध है। वह ही भागवत् और भगवत् का प्यारा है, जो शास्त्रों के सिद्धान्त और मुख्य तात्पर्य को समझ कर भगवत् में मन लगाता है, वह ही पण्डित और सर्वज्ञ है, नहीं तो सब गुण और पण्डिताई तुच्छ हैं।

ऐसे ही ऐसे उत्तर देकर नरसी जी ने सब सभा को निरुत्तर कर दिया। इस बात चीत में एक ब्राह्मण ने नरसी जी का प्रताप और हुण्डक के देने का वृत्तान्त राजा से वर्णन किया। राजा को विश्वास हुआ और वह चरणों में पड़ कर प्रार्थना करने लगा कि मेरे घर को पवित्र कीजिये। मेरे घर चल कर विराजमान हूजिये कि मेरी कृतार्थता हो। नरसी जी राजा को आश्वासन देकर और बोध कराके घर पर चले आये और भगवद्भजन में लगे।

नरसी जी भगवत् मूर्ति के संमुख भजन और कीर्तन किया करते थे और जिस समय राग केदारा गाते थे, उस समय भगवत् प्रसन्न होकर अपने गले की माला दिया करते थे, एक बार साधु सेवा का प्रयोजन पड़ जाने से इन्होंने केदारा राग साहूकार के यहाँ गिरवी रख दिया कि जब तक रुपया न देंगे, तब तक भगवत् को केदारा नहीं सुनावेंगे। उसी समय शत्रु लोगों ने राजा को बहकाया कि नरसी जी की बड़ाई और श्लाघा व्यर्थ फैल रही है, एक कच्चे धागे में फूलों की माला भगवत् को पहिना देता है और वह माला फूलों के भार से आप टूट पड़ती है। राजा परीक्षा लेने को तैयार हुआ। राजा की मा भगवद्भक्ता थी, उसने उसे बहुत समझाया परन्तु वह न माना। एक मोटे रेशम के डोरे की माला बनवा कर उसने भगवत् को पहिना कर नरसी जी से कहा कि हम भी तो देखें कि भगवत् तुमको माला किस प्रकार देते हैं। नरसी जी ने कीर्तन आरम्भ किया, एक केदारा छोड़ अन्य सब राग गाये परन्तु भगवत् प्रसन्न न हुए और न माला दी। तब तो नरसी जी ने बोल मारना प्रारम्भ किया कि नितान्त ग्वालबाल हो, एक माला के लिये इतनी कृपणता अंगीकार कर रक्खी है कि छाती से लगा रक्खी है और सिवा केदारा के और किसी भाँति प्रसन्न नहीं होते। विष्णु नारायण बड़े बुद्धिमान् हैं, कि सारे संसार का पालन करके अपने किंकरों की वाञ्छा पूरी करते हैं, मेरे भाग्य में तुम ग्वाल बाल लिख गये कि एक माला के निमित्त यह दशा है और ऐसी उदारता पर भी विशेषता यह है कि अपने से अलग भी नहीं होने देते, अपने मुख और अंगों की अनूप

छवि दिखा कर मुझे वशीभूत और अधीन कर लिया है, इस तुम्हारी कृपणता से मेरी क्या हानि है, तुम को ही कलंक लगेगा !

जब आप भगवत् ने यह बोली मारना सुना, तो नरसी जी का रूप बना कर और रुपया लेकर उस साहूकार के घर गये। साहूकार अभागा नींद में था, उसने कह दिया कि मेरी स्त्री को रुपया देकर अपना लिखा हुआ ले जाओ। जब भगवत् स्त्री के पास गये, तो उसने दण्डवत् और प्रतिष्ठा की और रुपया लेकर लिखना फेर दिया। पीछे कुछ भोजन कराके विदा किया। साहूकार की स्त्री को दर्शन होने का कारण यह है कि एक बार उस स्त्री ने नरसी जी से बहुत प्रार्थना करके विनय की थी कि भगवत् के दर्शन करा दो। तब नरसी जी ने वचन दे दिया था, भगवत् ने उनके वचन को पूरा किया। भगवत् ने कागज नरसी जी की गोद में लाकर डाल दिया। नरसी जी कागज देख कर प्रसन्न हो गये और राग केदारा ऐसा गाया कि और दिन तो माला भगवत् के गले से अलग हो जाया करती थी, उस दिन भगवत् मूर्ति ने अपने हाथ से नरसी जी को माला पहिनाई। सब ने जय जयकार किया और राजा दृढ़ विश्वास युक्त होकर चरणों में पड़ा। सब दुष्ट लज्जित हुए और भगवद्भक्ति का विश्वास करके भगवत् शरण हो गये।

मंसाराम–महाराज ! भगवत् ने बिना केदारा गाये ही माला देने की कृपा क्यों नहीं की।

मस्तराम–भाई ! बिना केदारा गाये माला न देने का यह कारण है कि पहिले तो नरसी जी के मन से केदारा राग की बड़ाई जाती रहती, सिवाय इसके साहूकार और दूसरे लोगों को उस राग का विश्वास न रहता और नरसी जी ने माला मिलने के लिये और सिद्धाई दिखाने की हठ की, उसका कारण यह है कि उस देश में भक्ति का प्रचार नहीं था, सिद्धता का यह प्रभाव देखने से बहुत लोगों ने भक्ति को अंगीकार किया। यदि इस सच्ची भक्ति की परीक्षा में कुछ अनर्थ प्रकट होता, तो सब लोग बेविश्वास हो जाते और भक्ति का प्रचार उस देश में न होता।

एक ब्राह्मण लड़की के विवाह के निमित्त लड़का ढूँढता हुआ जूनागढ़ में आया। कोई लड़का उसे उसकी रुचि के अनुसार न मिला। किसी ने नरसी जी का पता बताया कि उनका लड़का बहुत सुन्दर है। ब्राह्मण ने नरसी जी का लड़का आकर देखा, तो तुरन्त ही प्रसन्न होकर विवाह का तिलक कर दिया। नरसी जी ने कहा कि हम कंगाल हैं, तुम किसी धनी के यहां सम्बन्ध करलो। ब्राह्मण न माना और विनय करके नरसी जी की बड़ाई करता हुआ अपने नगर में गया और सब वृत्तान्त उसने लड़की के बाप से कह दिया। लड़की वाला नरसी जी का नाम सुन कर बहुत अप्रसन्न और क्रोधित हुआ और उस ब्राह्मण से कहने लगा कि वह लड़का अंगीकार नहीं है, टीका फेर लाओ। ब्राह्मण ने कहा कि जिस अंगुली से विवाह का तिलक कर आया हूं, उस अंगुली को यदि काट डालो, तो चिन्ता नहीं है परन्तु सम्बन्ध फिर नहीं सका। लड़की वाला लाचार हुआ और कहने लगा कि लड़की के भाग्य में जैसा है, वैसा अवश्य होगा शोच करना व्यर्थ है, विवाह में इतना दायज देवेंगे कि नरसी जी को धनाढ्य कर देंगे, जब विवाह का दिन निकट आया, तब उसने लग्न पत्रिका भेजी, नरसी जी ने उसे कहीं डाल दिया, विवाह का कभी चिन्तन नहीं किया, ज्यों के त्यों

भजन कीर्तन में लगे रहे।

जब विवाह के चार दिन रह गये और नरसी जी ने विवाह का नाम तक नहीं लिया, तो श्रीकृष्ण स्वामी और रुक्मिणी महारानी दोनों विवाह का कार्य संभालने के निमित्त आये। रुक्मिणी जी तो स्त्रियों के कार्य संवारने में लगीं और भगवत् आप नरसी जी के करने योग्य कार्यों में लगे। स्त्रियों ने विवाह के गीत गाना इत्यादि आरंभ किया और ठौर २ मिठाई और पकवान बनने लगे और नौबत नक्कारे बजने लगे। श्रीरुक्मिणी जी ने अपने हाथ से लड़के के भाल पर तिलक किया, जिसको चिरमुख, मुखमँडन अथवा मुखवट कहते हैं, आपही शृंगार करके लड़के को घोड़े पर चढ़ाया और जिस २ जगह जो २ नेग दान दक्षिणा का उचित था; सो दश गुणा किया। फिर ज्योंनार हुई असंख्य आदमी आये। ब्राह्मणों ने स्पर्द्धा और द्वेष के कारण से इतनी मिठाई और पकवान लिया कि पोट बांध २ घर ले गये। फिर बरात की तैयारी हुई असंख्य रथ, घोड़े, हाथी, पालकी सुन्दर २ इत्यादि पर पुरुष चढ़े। जब बरात चली तो भगवत् ने नरसी जी का हाथ पकड़ कर आज्ञा की कि तुम भी साथ चलो, गुप्त में यद्यपि हम साथ हैं परन्तु प्रकट में तुम स्वयं कार्य करते रहो। नरसी जी बोले कि महाराज! आप जानें और आपका काम जाने, मुझको ताल बजाना और आपका कीर्तन आता है, यह काम चाहो जहाँ ले लेना। जब भगवत् ने देखा कि सिवाय भजन कीर्तन के नरसी जी से कुछ न होगा, तो आप ही सब काम के अधिष्ठाता हुए। बरात धूम धाम से चल दी और सम्बन्धी के नगर के समीप पहुँची।

समधी ने बरात आने के पहिले अपने आदमी भेजे थे कि विवाह का दिन आ पहुंचा है, लड़का और दो चार आदमी जो आते हों, तो उनको ले आवो। उन लोगों ने इतनी भारी बरात देख कर लोगों से पूछा कि यह बरात किस की है, बरातियों ने कहा कि नरसी जी महात्मा की है। उन लोगों ने समधी के पास आकर बरात की भीड़ भाड़ और शोभा का वृत्तान्त वर्णन किया। समधी ने नरसी जी को कंगाल समझ कर कुछ सामान तैयार नहीं किया था, उन लोगों से कहा कि क्या मेरी हंसी करते हो, तो उन लोगों ने कहा कि हंसी नहीं करते, सत्य कहते हैं, तब तो समधी की बुद्धि उड़ गयी और उसने जो ब्राह्मण टीका दे आया था, उसको देखने के निमित्त भेजा। वह ब्राह्मण बरात को देख कर अत्यन्त प्रसन्न हुआ और आ कर समधी से कहने लगा कि इतनी बरात आई है कि तुम अपना सारा धन लगाने से घोड़ों को घास नहीं दे सके हो, जिधर दृष्टि जाती है, उधर बरात के सिवाय कुछ दिखाई नहीं देता। समधी घबरा कर आप देखने को गया, बरात देख कर शोच में पड़ा, धन का अहंकार दूर हुआ, प्रतिष्ठा रहनी कठिन समझी, लाचार और दीन होकर तिलक चढ़ाने वाले ब्राह्मण के चरणों में पड़ा और कहने लगा कि अब मेरी प्रतिष्ठा तुम्हारे हाथ है।

ब्राह्मण समधी को नरसी जी के पास ले गया, समधी ने जाते ही नरसी जी के चरण पकड़ लिये और हाथ जोड़ कर प्रार्थना की कि कृपा करो, मेरी प्रतिष्ठा रख लो। यह कहकर रोने लगा और चरण पकड़ लिये। नरसी जी ने उसे भगवत् के दर्शन कराये और आश्वासन देकर कहा कि दोनों ओर की लज्जा महाराज के आधीन है, ऐसा समझ कर विदा किया। भगवत् ने आप दोनों ओर का कार्य्य संभाला और इस धूम धाम से विवाह हुआ कि वर्णन नहीं हो सका। जब विवाह

करके नरसी जी घर आये, तब भगवत् द्वारका पधारे और भगवद्भक्ति का प्रताप सारे संसार में व्याप्त हुआ।

हे मंसाराम ! नरसी जी का यह प्रसंग पढ़ सुन कर भी जिसको भगवच्चरणों में प्रीति उत्पन्न न हो, तो उससे अधिक भाग्य हीन अन्य कोई नहीं है, क्योंकि यह चरित्र भले प्रकार बोध कराता है कि भगवत् की शरण होने से लोक परलोक की कोई चिन्ता नहीं रहती, भगवत् आप सब पूर्ण करते हैं।

कुं—नरसी जी का चरित सुन, कीजे भगवद्भक्ति।
तन में, सुत में दार में तज दीजे आसक्ति॥
तज दीजे आसक्ति, भोग में चित्त न दीजे।
सब से ही मुख मोड़, शरण भगवत की लीजे॥
भोला ! चिन्ता छोड़, भजन कर वनमाली का।
कृष्ण किया सब काम, स्वयं ही नरसी जी का॥

राम नाम

(रचयिता श्री गंगाविष्णु पाण्डेय विद्याभूषण)

राम नाम ले के शंभु ने पचाया काल कूट,
दूषण भी भूषण हुआ है काला कंठकूप।
राम नाम से उठाया लाभ श्री गजाननने,
सर्व पूज्य हो रहे हैं होके भी विचित्र रूप।
राम नाम से महत्व पाया है भुशुंडजी ने,
अन्यथा कहीं भी मान पाता काक का स्वरूप।
राम नाम से ही सिद्ध नारद हुए हैं और,
भक्त प्रह्लाद "विष्णु" राम नाम है अनूप।

आत्मानुभूति

(ले० श्री महात्मा राम)

गतांक से आगे

आत्मानन्द में स्थिति चाहने वाला विद्वान पुरुष अपने ध्येय को निरन्तर अपने लक्ष्य में अर्थात् ध्यान में रखता है। ध्येय उसे कहते हैं, जिसे मनुष्य प्राप्त करना चाहता है, अथवा जिसको प्राप्त होना चाहता हो। यहां आत्मा जो अपना स्वरूप है, वही ध्येय है उसी को प्राप्त करना परम कर्तव्य है। यद्यपि वह आत्मा सदा प्राप्त ही है परन्तु प्राप्त हुआ भी अज्ञात होने के कारण अप्राप्त के समान है. जैसे किसी दरिद्री के घर में दबा हुआ द्रव्य उसके दरिद्र को दूर नहीं कर सका। शुद्ध चैतन्य आत्मा के अज्ञान से अशुद्ध जड़ रूप देहादिक अनात्मा में आत्म बुद्धि दृढ़ होकर आत्मा से अति दूर ही दूर जा रही है। और महा विपत्तियों के कूप में निरन्तर डूबती जाती है। न जाने कब तक यह हालत रहेगी जैसे रज्जु जान कर पुरुष सर्प को पकड़ लेता है तब वह सर्प उसको डस लेता है उसकी जो हालत है वही आत्मा को न जान कर अनात्मा को आत्मा मानने वाले की होती है। सर्प के विष से तो एक बार ही मरता है आत्मा के अज्ञान से सदा ही जनमता मरता रहता है। ऐसे जनम मरणादिक रोग से वही पुरुष बच सका है जो अपने आत्म साम्राज्य की सामिग्री को संग्रह कर लेता है।

'सर्वं दुःख मेव विवेकिनः'।

विवेकी पुरुष की दृष्टि में संसार के पदार्थ [जिनको अविवेकी जीव, सुख रूप जानते हैं] वह

सर्व दुःख रूप हैं। इसलिये उन पदार्थों से निवृत्त होकर परम सुख रूप आत्मा को अनुभव करने के लिये निरन्तर आत्म अभ्यास में तत्पर रहता है।

'आसुप्तेरामृतेः कालं नयेद्वेदान्तचिन्तया।
दद्यान्नावसरं किंचित्कामादीनां मनागपि॥'

यह विवेकी पुरुष जागृत से सुषुप्ति पर्यन्त और सद्गुरु को प्राप्त होने से मरण पर्यन्त अपने समय को वेदान्त शास्त्र का चिन्तन करके व्यतीत करे जिससे काम क्रोधादिक विकारों को थोड़ासा भी अवसर न मिले।

'तन्निष्ठस्यमोक्षोपदेशात्।'

आत्मा के अभ्यास में निष्ठा वाले पुरुष को ही श्रुति स्मृतिओं ने मोक्ष की प्राप्ति कथन करी है यथा–

'एतद्बुद्ध्वा बुद्धिमान्स्यात् कृत कृत्यश्च भारत।'

हे अर्जुन ! इस आत्मा के स्वरूप को जब अपना ही स्वरूप करके जान लेता है तब यह बुद्धिमान पुरुष कृत कृत्य हो जाता है।

'तच्चिन्तनं तत्कथनमन्योन्यं तत्प्रबोधनम्।
एतदेकपरत्वं च ब्रह्माभ्यासं विदुर्बुधाः॥'

आत्म तत्व का पुनः २ चिन्तन करना तथा अधिकारी जनों के प्रति आत्म तत्व का कथन करना और अपने समान विद्वानों के साथ उसी आत्म तत्व का परस्पर एक दूसरे को बोधन करना इत्यादिक उपायों से जो उसी एक आत्म तत्व का प्रवाह जारी रखना है इसको विद्वानों ने ब्रह्माभ्यास कथन किया है।

'चिदिहास्तीह चिन्मात्रं सर्वं चिन्मयमेव तत्।
चित्त्वं चिदहमेते च लोकाश्चिदिति संग्रहः॥'

शुक्राचार्य ने बलिराजा के प्रति सर्व जगत् को चिन्मात्र रूप से कथन किया है कि हे राजन् ? यह सर्व जगत् चैतन्य का विस्तार रूप है इसलिये सर्व कुछ चैतन्य मात्र ही है। तू भी चैतन्य रूप है तथा मैं भी चैतन्य रूप हूं और यह सब लोक भी चैतन्य रूप ही है। ऐसा आत्म अभ्यासी विद्वान् निरन्तर राजयोग में दृढ़ होकर पंच दश अंगों द्वारा आत्मा का अभ्यास करता हुआ परम पद को प्राप्त होता है।

'राजयोग के पञ्चदश अङ्ग'

यम, नियम, त्याग, मौन, देश, काल, आसन, मूलबन्ध, देहसाम्य, दृक्स्थिति, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, आत्मध्यान, समाधि,।

यह १५ अङ्ग राज योग के कथन किये हैं इन अंगों के अभ्यास करने से उपरोक्त आत्मा का साक्षात्कार होता है।

यम–चराचर जगत् को ब्रह्म का ही स्वरूप जान कर जो इन्द्रिय समुह का निग्रह करना है यह यम कथन किया है और यह पुनः २ अभ्यास करने के योग्य है। सजातीय एक आत्माकार वृत्तियों का प्रवाह जारी रखना और विजातीय अनात्माकर वृत्तियों का तिरस्कार करना यह परम आनन्द का देने वाला नियम कथन किया है यह भी नियम पूर्वक करने योग्य है।

त्याग–सर्वत्र चैतन्य ही चैतन्य है इस प्रकार अवलोकन करते हुए सर्व प्रपंच का त्याग करना। यह त्याग महात्पुरुषों से पूज्य है, और शीघ्रातिशीघ्र मोक्ष का देने वाला है इसलिये इस का नाम त्याग है।

मौन–मन सहित वाणी जिसको प्राप्त न हो कर निवृत्त हो जाती है और जो मौन योगियों को प्राप्त होने के योग्य है वह मौन धारण करना चाहिये। जिससे वाणी भी निवृत्त हो जाती है उसे कथन करने को कौन समरथ हो सक्ता है अतः यह

है कि श्रुति में कहा है धैर्यवान् विद्वान् उस आत्मा को ज्ञान कर निरन्तर उसी आत्मा में बुद्धि को लगावे अनेक शब्द जाल रूप अनात्म शब्दों का उच्चारण न करे।

'शब्दजालं महारण्यं चित्त भ्रमण कारणम्।'

शब्दजाल बहुत बड़ा वन है। अतः शब्दादि व्यवहार का छोड़ कर उस पर ब्रह्म स्वरूप आत्मा में सर्वदा स्थिति रूप मौन को धारण करना जो श्रेष्ठ पुरुषों से सेवित है और जिसको 'सहज' इस नाम से कहते हैं। अन्यथा वाणी का मौन तो बालकों का होता है इस प्रकार ब्रह्मवादियों का कथन है।

'देश'-आदि अन्त और मध्य में जहां कोई वस्तु नहीं है किन्तु शुद्ध चैतन्य ही स्वयं स्थित है। और जिसने इस समस्त ब्रह्माण्ड को व्याप्त कर रखा है। जो सदा एक रस रहता है वह निर्जन देश है।

काल-फुरना मात्र से सर्वभूत प्राणियों को तथा ब्रह्मा से आदि लेकर सर्व जगत् को एक निमेष मात्र में उत्पन्न किया है [तदैक्षत बहुस्यां प्रजायेय] वह सत्य स्वरूप परमात्मदेव मैं बहुत रूप उत्पन्न होऊं ऐसी इच्छा करता हुआ ऐसा जो अद्वितीय अखण्ड आनन्द स्वरूप ब्रह्म है उसका नाम काल है।

आसन-जिस आसन में निरन्तर सुख पूर्वक ब्रह्म का चिन्तन होता रहे उसी को आसन जानना चाहिये और जहाँ सुख पूर्वक ब्रह्म का चिन्तन न रह सके वह आसन नहीं। जिससे सर्व भूत प्राणियों की सिद्धि होती है जो सर्व विश्व का अधिष्ठान है और जो नाश रहित है सिद्ध पुरुष जिसमें प्रवेश करते हैं वह सिद्धासन जानने योग्य है।

मूल बन्ध-जो सर्व जीवों का मूल है तथा जो चित्त के निरुद्ध होने का मूलस्थान है वह मूल बन्ध सदा सेवन करने योग्य है और राज योगियों को यही मूलबन्ध याग्य भी है।

'देहसाम्य' अंगों की समता नहीं जाननी चाहिये जो सम ब्रह्म में सर्व अंगों का लय कर दे और यदि ऐसा नहीं है तो शुष्क काष्ठ के समान बैठा रहना है।

दृक्स्थिति-ज्ञानमय दृष्टि से सर्व जगत् को ब्रह्म रूप ही देखना ऐसी दृष्टि ही का नाम दृक्स्थिति है, नासिका के अग्र भाग में ही देखने वाली दृक्स्थिति नहीं कही जाती। जहां द्रष्टा, दृश्य और दर्शन सब ही की समाप्ति हो जाती है वही दृक्स्थिति कहनी चाहिये।

'प्राणायाम' चित्त से आदि लेकर सर्व भाव पदार्थों को ब्रह्म रूप जानते हुए जो सर्व वृत्तियों का निरोध करता है उसे प्राणायाम कहते हैं 'नेह नानास्ति किन्चन' इत्यादि श्रुति और युक्तियों से जो प्रपंच का निषेध करना है वह 'रेचक' प्राणायाम है। और 'अहं ब्रह्मास्मि अर्थात् मैं ब्रह्मस्वरूप हूं ऐसी वृत्ति का प्रवाह रखना 'पूरक' प्राणायाम कहा है। और उसी 'अहंब्रह्मास्मि' वृत्ति का जो निरोध अर्थात् निश्चलता से ठहरना है वह 'कुम्भक' प्राणायाम है। यह प्राणायाम तत्वज्ञ विद्वानों का होता है और प्राण पीडन आदि अज्ञानियों का प्राणायाम होता है।

'प्रत्याहार' सर्व विषय भोगों को आत्मा रूप से देखते हुए सर्व काल में मन को चैतन्य रूप समुद्र में गोते खिलाना अर्थात् चैतन्य ही चैतन्य का मन में ध्यान बनाये रखना प्रत्याहार कहा गया है। यह प्रत्याह मुमुक्षुजनों को सदा अभ्यास करने योग्य है।

'धारणा' जहां २ मन जाय वहां २ ब्रह्म का ही दर्शन होवे ऐसे ब्रह्म दर्शन में मन को धारण

करना 'धारणा' कही जाती है।

'ध्यान' मैं ब्रह्म हूं ऐसी सद्वृत्ति होना और उस वृत्ति में ब्रह्म से भिन्न आश्रय के अभाव से वृत्ति का स्थित होना ध्यान शब्द से कहा जाता है और वह वृत्ति परमानन्द के देने वाली है।

'समाधि' वही वृत्ति जब सर्व विकारों से रहित होकर ब्रह्माकार रूप से स्थित होकर सर्व अनात्म वृत्तियों को भूल जाती है तब उसे ज्ञान संज्ञक समाधि कहते हैं। इस प्रकार अकृत्रिम आनन्द का भाव जब तक न हो तब तक सम्यक् प्रकार से अभ्यास करते रहना चाहिये। समाधि में जुड़े हुए एक क्षण मात्र भी आनन्द का अभाव न हो तब समाधि की सिद्धि जाननी चाहिये। पश्चात् सर्व साधनों से मुक्त होकर योगीराज सिद्ध हो जाता है। उस काल में उसके मन में विषय वासना का लेश भी नहीं रहता है। उसको जो आनन्द होता है वह मन वाणी का अविषय है।

समाधि करने वाले पुरुष को समाधिकाल में विघ्न भी आजाते हैं।

प्रायः फल सिद्धि के अवसर पर विघ्नों का आक्रमण होता ही है। आत्मा का अनुसंधानराहित्य अर्थात् ध्यान करना भूल जाना, आलस्य, भोगों की इच्छा जाग आना, लय, (गुम) होना, तमोगुण आना, विक्षेप (चंचलता) रसास्वादन, शून्यता इस प्रकार अनेक विघ्न होते हैं उन विघ्नों को सावधानता पूर्वक ब्रह्म वेत्ता पुरुष ने शनैः २ हटा देना चाहिये। क्योंकि जिसकी वृत्ति भावमई होती है उसको तो भावत्व का ही लाभ होता है और यदि शून्य वृत्ति होगी तो शून्यता को ही प्राप्त होगा। अतःपूर्ण ब्रह्ममयी वृत्ति रखने से पूर्ण ब्रह्मत्व को ही प्राप्त होगा इसलिये पूर्ण ब्रह्म का ही अभ्यास करना चाहिये। जो ऐसी पवित्र ब्रह्ममयी वृत्ति को त्याग देते हैं वह वृथा ही जीते हैं मनुष्य नहीं बल्कि पशु के समान हैं। और जो ऐसी वृत्ति को जानते हैं तथा जान कर उसको बढ़ाने का अभ्यास करते हैं वे सत्पुरुष ही धन्य हैं तथा तीनों लोकों से नमस्कार किये जाने के योग्य हैं। जिन्हों की वृत्ति बढ़ कर परिपक्व होगई है वे ही परब्रह्म को प्राप्त होते हैं अन्य जो केवल शब्दों का पहाड़ बांधना जानते हैं वे ब्रह्म को प्राप्त नहीं होते हैं।

'कुशला ब्रह्मवार्तायां वृत्तिहीनाः सुरागिणः।
तेऽप्यज्ञानतमा नूनं पुनरायान्ति यान्ति च ॥'

जो पुरुष ब्रह्म के विषय में वार्तालाप करने में अति कुशल हैं और ब्रह्म को विषय करने वाली वृत्ति से शून्य हैं इन्द्रियों के विषयों में आसक्ति वाले हैं वह निश्चय करके अज्ञानी हैं और गति अगति अर्थात् जन्मना पुनः मरना यही उनकी गति है। और जो सत्पुरुष हैं वे निमेशार्ध भी ब्रह्ममयी वृत्ति के बिना नहीं ठहरते हैं जैसे ब्रह्मादि देवता तथा सनकादिक और शुकादिक ऋषिमुनि सदा ब्रह्ममयी वृत्ति रखते हैं। जो कार्य होता है वह कारण रूपता को प्राप्त होता है अतः विचार करने से सर्व जगत् कारण ब्रह्म रूपता को प्राप्त होता है और कार्य का अभाव हो जाता है।

इस प्रकार ब्रह्मात्मिका वृत्ति शुद्ध चित्त वाले पुरुष के उत्पन्न होती है। प्रथम कारण कार्य को व्यतिरेक अर्थात् न्यारा न्यारा करके देखो पश्चात् कार्य को कारण में अन्वय करके नित्य ही कारण रूप से देखता हुआ कार्य का त्याग कर देवे। तीव्र वेग से भावना की हुई वस्तु निश्चल हृदय में वैसी ही होजाती है जैसी पुरुष चाहता है जैसे भृङ्गी और कीड़ा का उदाहरण है।

दृश्य और अदृश्य यह सर्व ही चिदात्मा

रूप है दृश्य को अदृश्य में लय करके नित्य ही ब्रह्माकार से चिन्तन करे इस प्रकार चिन्तन करता हुआ विद्वान् नित्य ही चैतन्य रस से पूर्ण होकर सुख में स्थित रहता है।

सब सुखों का आदि स्रोत

(ले० श्री प्रभुदेव ब्रह्मचारी आश्रम)

संसार का उच्च से उच्च और नीच से नीच जीव सुख की ओर बड़ी उत्सुकता से बढ़ता हुआ दृष्टि पड़ रहा है। यह एक ऐसी अपूर्व वस्तु है कि जिस का विधाता ने जीवों के साथ इतना घनिष्ट सम्बन्ध जोड़ दिया है जो त्रिकाल में भी वियुक्त होता हुआ नहीं प्रतीत होता। राजा से लेकर रंक तक, क्या जोगी, संन्यासी, क्या अवधूत, क्या पृथिवी के अन्य चराचर जीव सभी इस धुन में मगन हो रहे हैं। जिन को जो प्राप्त है उसमें सुख की अल्पता देख कर बहुत की खोज में लग रहे हैं। राजा की इच्छा है कि जो मेरे अधिकार में है यह अल्प है मैं बहुत सेना का मालिक होऊं, मेरा धन भंडार कुबेर से भी अधिक हो, मेरा नाम संसारव्यापी हो आदि, इसी प्रकार रंक का यही विचार है कि "आज मैंने एक पैसा कमाया कल दो कमाऊं तो अच्छी तरह से कुछ गुजारा हो इत्यादि:—परन्तु कर्ता की अनन्त सृष्टि में ऐसे जीव विरले ही मिलते हैं जो वास्तविक सुख के अभिलाषी हैं तथा उसके खोजी हैं। सांसारिक सुख की इच्छा वाले जीव की दृष्टि में उस सुख से बढ़ कर कोई सुख नहीं है वे लोग धन दौलत, एवं स्त्री पुत्रादि में ही अपने को कृतकृत्य मानते हैं। जो साधु पुरुष सच्चे सुख के खोजी हैं वे इस संसारी सुख की ओर आँख उठा कर भी नहीं देखते वे निरन्तर उस सुख के आदिस्रोत भगवान् की भक्ति में भरपूर रहते हैं। उनकी दृष्टि में सांसारिक पदार्थों का सुख तुच्छ वस्तु है। वे वास्तविक सत्य सुखस्वरूप भगवान् के पूरे उपासक होते हैं। वे लोक लाज से दूर रहते हैं। पन्थ मजहब छोड़ एक भगवान् को ही मानते हैं। उनको त्रिलोकी का राज्य भी प्राप्त होवे तो ठुकराते हैं। वे सत्य के पुजारी होते हैं। उनका स्वभाव दयालु होता है वे संसारी जीवों को दयनीय जान कर उन पर दया की दृष्टि रखते हैं। वे सम्पूर्ण शास्त्रों के शास्ता, ज्ञाता होते हैं। वे:—

"नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः॥"

के अर्थ को पूर्ण रूपेण वर्तते हैं। वे कौड़ी भी पास न होने पर अपने को हजारों क्रोड़पतियों से भी बढ़ कर धनपति समझते हैं। घरबार कुछ भी सामग्री न होते हुए अपने को सब से बड़े कुटुम्बी समझते हैं, वे अत्यन्त दुःख की अवस्था में भी अपने को सब से सुखी समझते हैं। समझते क्या हैं वास्तव में देखा जाय तो वे ही सब से बड़े हैं, क्योंकि अनन्त धनपतियों के पति भगवान् जिन के हृदय में विराजमान हैं जिन्होंने अपना आत्म ज्ञान रूपी महा खजाना खोज निकाला है उनसे बढ़ कर कौन धनी होगा। अस्तु अब यह निश्चय करना है कि सुख क्या वस्तु है, कहां से उत्पन्न हुआ, इस का आदि कारण कौन है।

शास्त्र में लिखा है कि:—

अनुकूल वेदनीयं सुखम्।
प्रतिकूल वेदनीयं दुःखम्॥

अनुकूलता ही सुख है, प्रतिकूलता ही दुःख है। सुख भी दो प्रकार के होते हैं। बाह्य और आभ्यन्तरीय। बाह्य सुख सांसारिक पदार्थों की

प्राप्ति में होता है। आभ्यन्तरीय सुख अन्तःकरण की शान्ति का फल है।

श्री भगवद्गीता में तीन पुरुष बतलाये हैं।

यथाः–द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते॥
उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः।
यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः॥

लोक में क्षर और अक्षर ये दो पुरुष हैं, क्षर तो सम्पूर्ण प्राणी हैं जो नाशवान् हैं और अक्षर कूटस्थ है। 'कूटो राशिः इव स्थितः'। कूट राशि के समान स्थित अथवा कूट नाम माया, वञ्चना, जिह्मता, (कुटिलता) आदि अनेक माया रूप से स्थित है। और उत्तम पुरुष तो तीसरा है जो परमात्मा कहाता है जो तीनों लोकों को चैतन्य-शक्ति प्रवेश करके पोषण करता है, वह अव्यय है ईशन शील है।

उक्त कथन से परमेश्वर सब का आदि कारण हुवा उससे न्यून उसकी शक्ति माया हुई उससे भी न्यून माया का कार्य संसार है। संसार का बीज कूटस्थ माया है। इसलिये सांसारिक सुख माया के कार्य होने से अनित्य (क्षणिक) विनाशी और संतत परिवर्तनशील हैं। अतः वह सुख भी वास्तव में दुःख ही है। जैसा कि योग शास्त्र में कहा हैः–

'परिणामतापसंस्कारदुःखैर्गुणवृत्ति-
विरोधाच्च दुःखमेव सर्वं विवेकिनः।

परिणाम दुःख, ताप दुःख, संस्कार दुःख, और गुणवृत्ति विरोध बना रहने से विषय जन्य सुख भी विवेकी के लिये दुःख ही है। जिस प्रकार एक बुद्धिमान के लिये विष से मिला हुवा भोजन कितना भी स्वादु क्यों न हो दुःख रूप ही है, उसको वह प्रतिकूल ही समझता है इसी प्रकार विवेकी पुरुष को विषय सुख सदा प्रतिकूल ही प्रतीत होता है।

विषय सुख के भोग काल में परिणाम दुःख इस प्रकार है जैसे अग्नि में घृत की आहुति डालना घृत से अग्नि के बढ़ने के समान विषयों में लालसा बढ़ती है और दुःख का कारण होती है।

यथामनुः–न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते॥

इस प्रकार इन्द्रियों की चंचलता बहुत बढ़ जाती है, निरन्तर तृष्णा लगी रहती है। अशान्ति सदा बनी रहती है। "अशान्तस्य कुतः सुखम्" अशान्त को सुख कहां हो सकता है। इसी प्रकार ताप संस्कारादि दुःख ही विषय सुख के फल हैं। जो कि रज्जु में सर्प, स्थाणु में पुरुष, गगन में नीलता, मरीचिका, (मरुभूमि) में जल के समान मिथ्या ही सुख प्रतीत होते हैं वास्तव में सुख लेशतोऽपि नहीं हैं। उस अविनाशी परमेश्वर की चैतन्य शक्ति के कार्य संसार के सुखों में ही सम्पूर्ण विश्व डूब सा रहा है विचारने पर यह मिथ्या तथा कल्पित सुख भी उसी सुख निधान भगवान् से ही उद्भूत हो रहा है। अतः इसका भी स्रोत वही है। उपनिषद् में कहा हैः–

रसोहि सः रसं ह्येवायं लब्ध्वा आनन्दी भवति सुखी भवति। परमात्मा रस-सुख रूप है उसी को प्राप्त होकर यह जीव आनन्दी तथा सुखी होता है। और भी उपनिषद् में कहा है।

"आनन्दं ब्रह्मणो रूपम् आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जातानि, आनन्देन जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति।

आनन्द (सुख) ब्रह्म का रूप है, आनन्द से ही सम्पूर्ण भूत उत्पन्न हुये हैं, आनन्द से ही जी रहे हैं। अर्थात् सुख की उत्पत्ति का हेतु वही सुख निधान भगवान है। वही इसका आदि स्रोत है।

उसी की अनुकूलता में जीव सुख से जीते हैं प्रतिकूलता में लय हो जाते हैं।

यदि भगवद्भजन साधनादि द्वारा जीवन की नैया को सुदृढ़ बना लिया तो उसी भगवान् की प्राप्ति रूप श्रेय सुगम है अन्यथा अपना लक्ष्य से च्युत हो कर कभी किसी को सुख शान्ति नहीं प्राप्त हो सकती है। शास्त्रों में स्थान २ पर यही कहा गया है कि मनुष्य का कर्तव्य पूर्ण सुख स्वरूप भगवान् की प्राप्ति है। इसी में भलाई है अन्यथा खैर नहीं है।

इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः।
भूतेषु भूतेषु विचित्य धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति ॥

यदि उस परम ज्ञान स्वरूप परमात्मा को इस मनुष्य शरीर में जान लिया तो ठीक है और यदि यहां नहीं जाना तो बड़ी भारी क्षति होगी धीर पुरुष उसको सर्वत्र परिपूर्ण-विभु, व्यापक, जान कर इस लोक से जा कर सुख रूप होजाते हैं।

सारमेव रसं लब्ध्वा साक्षाद्देही सनातनम्।
सुखी भवति सर्वत्र अन्यथा सुखता कुतः ॥

यह देही साक्षात् सनातन सुख रूप सार तत्व को प्राप्त करके ही सर्वत्र सुखी होता है अन्यथा संसार में सुख का लेश भी नहीं है। इसलिये प्रत्येक मनुष्य का यह लक्ष्य होना चाहिये कि वह उस नित्य विभु व्यापक परमात्मा के गुणों का श्रवण, मनन, भजन, निदिध्यासन ध्यान पूर्वक दृढ़ चित्त से करे तथा सांसारिक सुख से सदा उपरति धारण करे।

प्रेम प्रादुर्भाव के लक्षण

(ले० श्री भक्तराज मथुरा प्रसाद जी)

प्रेमी भ्राताओ गतवर्ष के मार्गशीर्ष तथा पौष मास के अंक नं० ३ व ४ में प्रेम प्रादुर्भाव के लक्षण शान्ति से लेकर मानशून्यता तक प्रकाशित हो चुके हैं। उसके आगे आशा बन्ध कहा जाता है। आशा दो प्रकार की होती है एक किसी संसारी संपत्ति स्त्री पुत्र धन आदि की दूसरे अपने इष्टदेव की प्राप्ति की इनमें संसारी पदार्थों के मिलने की आशा तो प्रेमी के पास ही नहीं फटकती केवल प्यारे इष्ट देव भक्त वत्सल भगवान् के दर्शन तथा उसकी कृपा की चाह बनी रहती है और उस आशा की दृढ़ता के साथ उत्कण्ठा बढ़ती जाती है इसमें एक दृष्टान्त सुनिये:-

गंगा तट पर एक भगवद्भक्त हरि भजन कर रहा था, वहां एक समय देव ऋषि नारद आपहुंचे भक्त ने महर्षि का आदर सत्कार करके बड़ी नम्रता से प्रश्न किया महाराज! मुझे भगवान् के दर्शन होंगे या नहीं यदि होंगे तो कब? नारद जी ने कहा कि इसका उत्तर हम अभी नहीं दे सकते। वैकुण्ठ धाम से आकर देंगे। नारद जी सीधे वैकुण्ठ पधार गये और भगवान् से पूछ बैठे कि महाराज अमुक भक्त को आप दर्शन देंगे या नहीं और देंगे तो कब? भगवान् ने चित्र गुप्त जी को बुला कर उस भक्त के कर्म लेख को देखा तो उसके अनुसार भगवान् ने आज्ञा करी कि जिस वृक्ष के नीचे बैठ कर वह भजन कर रहा है उसमें जितने पत्ते हैं उतने जन्मों के अनन्तर हम उसे दर्शन देंगे नारद जी ने उसी प्रकार भक्त को उत्तर दे दिया ऐसे वचन महर्षि के मुख से सुनते ही भक्त के

अन्तःकरण में प्रेम की तरंगें उठने लगीं। वह बोला कि महाराज क्या त्रिलोकीनाथ सर्वेश्वर भगवान् इस अधम महातुच्छ प्राणी को दर्शन देंगे क्या इस पातकी जीव का उनको ध्यान है आहा मेरी आशा पूर्ण होगी। क्या कोई समय ऐसा होगा कि स्वामिनी स्वामी की दिव्य अनुपम जोड़ी मेरी दृष्टि के सन्मुख खड़ी होगी। ऐसा कह कर उत्कण्ठा के वेग में वो नृत्य करने लगा और बड़े अनुराग से पद गाने लगा।

अहा हा धन्य धन प्यारी भली कब वो घड़ी होगी।
वो जोड़ी सांवरी गोरी मेरे सन्मुख खड़ी होगी॥
महा योगीश्वरों के ध्यान में भी जो नहीं आते।
उन्हीं चरणों में मेरी दण्डवत् काया पड़ी होगी॥
मेरे सरपर धरेंगे कर कमल करके कृपा दोनों।
चरण धोने को उनके मेरे अंसुओं की झड़ी होगी॥
निरखना चाहेंगी मेरी ये आंखें मोहिनी छवि को।
परन्तु विघ्न उसमें मेरे अंसुओं की लड़ी होगी॥
युगल की आज्ञा पाकर खड़ा हो दोनों कर जोड़े।
करूं विन्ती तथापि दृष्टि चरणों में अड़ी होगी॥
कहूंगा मैं अहो सरकार प्यारे स्वामिनी स्वामी।
जुदा कीजे न चरणों से यही किरपा बड़ी होगी॥
बनूं वो रज चरण जिस पर पड़ें सरकार के हरदम।
सुफल तब ही दयालु मेरी जीवन जेवड़ी होगी॥
तथा अस्तु ये फरमायें जभी श्री राधिका मधुरेश।
घड़ी मेरे लिये धन धन वो रत्नों से जड़ी होगी॥

इस पदको गाते २ मूर्छित हो जाता है नारद जी उसके प्रेम की ऐसी दशा देख कर चकित हो गये। उसे पृथ्वी पर से उठाते हैं और चेत करा कर विदा होना चाहते हैं। परन्तु भक्त चरणों में लिपट कर रोता हुआ कहता है महाराज आप को धन्य है आपने मुझे भगवान् के दर्शन देने के समाचार सुनाये मेरी आशा की मुरझाई बेल को हरी भरी कर दिया। जरा फिर तो कहिये भगवान् मुझे दर्शन देंगे। आहा मेरे ऐसे भाग जागेंगे। यह तो कहिये वो मुझे जानते हैं और कब कृपा करेंगे।

नारदजी बोले बाबा तू अभी ऐसा व्याकुल क्यों हो गया अभी तो तेरे अनेक जन्म होंगे तब दर्शन देंगे। यह सुन कर भक्त अपनी कुटिया में जाकर लकड़ी और फूंस उठा लाया और दूसरे स्थानों से भी लकड़ी फूंस एकत्र करके बड़ी भारी चिता-बनाली और कहने लगा। भगवन्! मैं अभी जीवन समाप्त किये देता हूं आप को नहीं जाने दूंगा अब २ जन्म लूंगा झट ही शरीर छोड़ता रहूंगा इस प्रकार उत्कण्ठा प्रकट करके चिता में जा बैठा अग्नि लगाने की तैयारी करली उधर ज्यों ही चिता में आग लगाई आकाश में श्री गरुड़ भगवान् के पंखों का घोर शब्द सुनाई दिया नारद जी ने आंख उठा कर ऊपर को देखा तो श्री शोभाधाम अभिराम पूरनकाम घनश्याम मदनमोहन छबि ललाम के भी दर्शन हुए। प्रभु ने शीघ्र ही गरुड़ से उतर कर भक्त का हाथ पकड़ कर उसे चिता से बाहिर खींच लिया भक्त विह्वल होकर चरणों में गिरा। नारद जी से नहीं रहा गया बोल उठे कि भगवन् आप बड़े मिथ्यावादी निकले मुझ से तो कह दिया कि अनेक जन्मों के पश्चात् इसे दर्शन दूंगा और आप अभी पधार आये।

प्रभु ने समझाया कि ऋषिराज जिस रीति से यह मेरा भजन कर रहा था उसके अनुसार तो इसे मेरे दर्शन इस जन्म में कदापि नहीं प्राप्त हो सकते थे। परन्तु इसका प्रेम तथा उत्कण्ठा इस दरजे बढ़ गई कि मुझे खिंच कर आना पड़ा, उत्कट प्रेम के आगे कोई नियम या मर्यादा नहीं ठैर सकती। देवताओं ने आकाश से फूल बरसाये,

भक्त कृतार्थ हो गया, इस प्रकार की दृढ़ आशा तथा पराकाष्ठा की उत्कण्ठा का परिणाम ये ही होता है।

प्रेमी जन को क्षण में आशा की दृढ़ता और उसके साथ ही समुत्कण्ठा बुद्धि से शीघ्र ही दर्शन लाभ होता है। इसके अनन्तर (नाम गाने सदा रुचिः) यह लक्षण कहा गया है। हरिनाम का आस्वादन प्रेमी का जीवन आधार है। प्रेम प्रादुर्भाव से पहले भी हरिनाम का अवलम्ब भक्त को प्रेम पदार्थ की प्राप्ति का मुख्य साधन होता है परन्तु ज्यों ज्यों प्रेम का उदय होता जाता है उसमें आनन्द बढ़ता है और नाम गान में रुचि वृद्धिगत होती है। और उसके आनन्द का अनुभव प्रेमी भक्त को कैसा होता है वह इस श्लोक से प्रकट होगा।

मृद्वीकार सिता सिता समशिता स्फीतं निपीतं पयः।
स्वर्गेनाऽपिसुधाप्यधायि कतिधा रंभाधरस्तुम्बितः॥
सत्यं ब्रूहि मदीय जीव भवता भूयो भवे भ्राम्यता।
कृष्णेत्यक्षरयोरयोर्मधुरिमोद्गारः क्वचिल्लिक्षितः॥

अंगूर दाखों की मिठाई भी चखली और मिश्री कन्द आदि भी भली प्रकार खा देखे और निर्मल शीतल मधुर दूध के मिठास का भी अनुभव किया और कई बार स्वर्ग में जाकर अमृत का मिठास तथा रम्भा आदि अप्सराओं के अधर का चुम्बन करके उसके मधुरता का भी अनुभव किया। परन्तु हे जीव तू सत्य कह अनेक बार संसार में घूम कर तूने सब प्रकार की मिठाइयों का स्वाद लेते हुए भी कभी कृष्ण इन दो अक्षरों के मिठास की बराबर कहीं भी कोई माधुर्य पाया। अर्थात् कहीं नहीं। प्रयोजन यह है कि भगवत् नाम के माधुर्य का स्वाद भगवत् प्रेमी ही जानता है इसी लिये उसकी रुचि नाम गायन में सदा सर्वदा बनी रहती है।

अनुरोध

(ले० श्री प्रभुदेव ब्रह्मचारी भ० मं० आश्रम)

प्रियतम ! रम जा मेरे मन में ॥
तुही गगन में तुही धरन में, तुही नगर उपवन अरु वन में।
जन में रन में धन में सब के, तुही रमा है तन में ॥
नभ आंगन में सुर प्रांगन में, धीर समीरण के रण २ में।
सघन गगन के प्रति घन घन में, छाये दामिनि गन में ॥
अमन सुमन में भ्रमर दलन में, विटप लतन अरु बाग चमन में
श्रवन पुटन में रुदन कदन में, नयन अयन अंसुवन में ॥
नव जीवन में बालापन में, गहन गम्भीर धीर यौवन में।
गुण गरिमामय आयातन में, सकल भवन भगतन में ॥
प्रणयीजन में सुखद शयन में, प्रकृति नदी के विपुल भवन में
इनमें उनमें सब त्रिभुवन में, छाये निर्जन जन में ॥
उडुगन गन में प्रगट नयन में, प्रखर दिवाकर की किरणन में
जिन में तिन में जड़ चेतन में, प्रभु वर जीवन धन में ॥

महात्मा शाह जलाल उद्दीन बसाली

(ले० श्री यमुना प्रसाद श्रीवास्तव)

महात्मा बसाली भगवान में लीन हो चुके थे इसी कारण उन्हें 'बसाली, कहते थे। 'बसाली' शब्द फारसी भाषा का है। इसकी व्याख्या कवि बलीराम जी ने सुन्दर सरल और सरस शब्दों में इस प्रकार की है।

डेरा डाल दीजे उठि राह लीजे।
जिस राह में पीव को पाइये जू ॥
'हम-तुम' से न्यारे हो रहिये।
नित हंसिये, खेलिये, गाइये जू ॥
मुए मुक्त मीत की चाह कैसी।
जो पै जीवते पीव न पाइये जू ॥

'चलो' अन्त समय जहं जावना है।
तहं जीवने क्यों नहीं गाइये जू॥

महात्मा वसाली सूफी हुस्न-परस्त अर्थात् श्रृंगार निष्ठा के भक्त थे और श्रीरामचन्द्र जी के उपासक होने के अतिरिक्त वे उनकी अलौकिक छबि पर मोहित थे। उनका विश्वास था कि श्रीरामचन्द्र जी अत्यन्त सुन्दर और स्वरूपवान् हैं। उनकी भक्ति करने से निश्चय ही मुक्ति मिलती है जैसा कि कवि खुशतर ने उर्दू-रामायण में कहा है।

'इबादत का नहीं है आज कल काम।
फक़त काफी है 'सीताराम' का नाम॥
करे वरदे ज़बाँ जो कोई यह 'नाम'।
गुलस्ताने जहां में पाय आराम॥
न जाते हर बशर इस 'नाम' से है।
कि आखिर काम सीताराम से है॥
मुबारे 'नाम' कर तू दिल का गोशा।
कि राहे-आखरत का है यह तोशा॥'

महात्मा वसाली खुरासान देश के निवासी थे। घूमते फिरते हुए पंजाब प्रान्त के मुलतान नगर में आ निकले थे। उसी नगर में पण्डित टेकचन्दजी कथावाचक भी रहते थे। वे प्रतिदिन संध्या समय त्रिञ्जियन नामी वृक्षावली के नीचे समर्द माई के चबूतरे पर रामायण की कथा बांचा करते थे। बड़े ही सुयोग्य वक्ता थे। श्रोताओं को खूब ही रिझाते थे। पद-पदार्थ की व्याख्या को ऐसी करते थे कि स्त्रियां और छोटे छोटे बच्चे भी आसानी से समझ लेते थे। जिस रस का वर्णन करते थे उसका तो चित्र ही खींच देते थे। उनका स्वर इतना कोमल और मधुर था कि उन्हें 'वाणी भूषण' अथवा 'कवि कोकिल की उपाधि से विभूषित किया जाय तो अनुचित न होगा। इन सब सामग्रियों से उनकी कथा खूब जमती थी। कई सहर श्रोता इकट्ठे होते और कान लगाकर कथा सुनते थे। शोर वा गुल का तो नाम न रहता था। इतनी भीड़ होने पर भी वहाँ शान्ति विराजती थी।

[२]

विदेहराज राजा जनक की फुलवारी का प्रसंग था। मिथिलावासी श्रीरामचन्द्र जी की अपार शोभा पर मुग्ध थे। पण्डित जी ने श्रीरामचन्द्र जी की शोभा का वर्णन ऐसी सरल और ओजस्विनी भाषा में किया कि श्रोताओं के हृदय गद्गद् हो गये ज़बान से निकल गया।

'किसी की आंख में जादू तेरी ज़बान में है।'

कुछ रात्रि बीते कथा समाप्त हुई। श्रोतागण आरती ले लेकर अपने घर जाने लगे। पण्डित जी ने भी अपनी पुस्तक बांधी। इसी बीच में शाह साहिब ने आकर कहाः–

"पण्डित जी! आपकी पद-पदार्थ की व्याख्या सुनकर मैं अत्यन्त प्रसन्न हुआ। कृपा कर यह बतलाइये कि यह कौनसी बहु अर्थ-गौरवान्वित पुस्तक है और इसमें किस यूसफे-सानी सुन्दर व्यक्ति के सौन्दर्य और लावण्य का वर्णन है।"

पण्डित जी ने कहा।

"शाह साहिब हिमालय से कुछ दूरी पर एक विशालनगर बसा है उसका नाम अयोध्या है। यह सूबे अवध की राजधानी है। छत्रपति महाराज दशरथ वहाँ राज्य करते थे। वे बड़े प्रतापी और धर्मात्मा थे। महाप्रभु श्रीरामचन्द्र जी उन्हीं के सुपुत्र थे। वे बड़े शूरवीर बुद्धिवान् और सुन्दर थे।

'गुण सागर नागर बर बीरा।
सुन्दर श्यामल गौर शरीरा॥'

इस पुस्तक का नाम रामायण है। इसमें उन्हीं की मंगलमय लीलाओं का वर्णन है। कहिये!

उनकी कथा आपको अच्छी तो लगती है !"

शाह साहिब ने कहा:-

"पण्डित जी ! मैं कई दिनों से बराबर यहां आकर कथा सुन लेता हूं। बड़ा आनन्द आता है। कथा सुनते सुनते मैं तो शाहजादे अवध का आशिक हो गया हूं। दीन दुनिया से मुँह मोड़कर उन्हीं के कूचे में मुकीम हूं।"

शाह साहिब की बातें सुनकर पंडित जी बड़े अचम्भे में आये। उनके नेत्रों से बहती अश्रु-धारा को देखकर वे गद्गद् होगये और यह कहा।

"शाह साहिब ! आप कथा के बड़े प्रेमी हैं। कृपाकर रोज दर्शन दिया कीजिये। मैं आपको अपने पास ही बैठा लिया करूंगा।"

शाह साहिब ने अमित उत्साह और उल्लास में भरकर कहा।-

"पंडित जी ! मैं तो हर रोज सबसे पहिले आता हूं, और सबसे पीछे जाता हूं। परंतु मुझे यहां कोई बैठने नहीं देता। खड़े खड़ें ही कथा सुनलिया करता हूं। अच्छा ! अब जाता हूं, कल फिर आऊंगा।"

(३)

शाह साहिब की इस प्रेम वार्ता की चर्चा मुसलमानों के कानों में पहुंची। वे अत्यन्त क्रोधित हुऐ सबों ने सलाह करके मौलवी अब्दुल्ला के मकान पर मजलिस जोड़ी। सम्पूर्ण मुसलमानों को बुलाया और शाह साहिब को भी पकड़वा मंगवाया मौलवी साहिब ने वाअ़ज़दी, इसलाम धर्म की व्याख्या तथा तरीकत और शरीयत की तलकीन की। सब लोग ध्यान से सुनते रहे। शाह साहिब ने उस ओर ध्यान। तक नहीं दिया वे अपने प्रेम के उमंङ्ग में भरकर एक कौने में बैठे यह गाते रहे।-

'काफिरे इश्कम मुसलमानी मरा दरकार नेस्त।'

अर्थात् मैं प्रेम-पथ का पथिक हूं। मुझे मुसलमानी की जरूरत नहीं है।

अन्त में वे यह कह कर।

'इबादत मेरी यह है, मेरा अरमान है यही,
आजाय तू नज़र, तो तुझे देखता रहूं।'

चुपके से कथा में चले आये।

चले जाने पर शाह साहिब की खोज हुई। परंन्तु वे वहां नहीं मिले। सब लोग उन्हें खोजते हुये कथा में आये। उस समय शाह साहिब पंडित जी के पास बैठे कथा सुन रहे थे, उनके नेत्रों से प्रेमाश्रुओं की धारा बह रही थी और शरीर पुलकित होरहा था। उन्हें अपने तन बदन की सुधि भी नहीं थी।

शाह साहब की यहदशा देख लोग दंग रह-गये मुसलमानों को सन्देह हुआ कि हो न हो पंडित जी ने ही शाह साहिब को गुमराह किया है और मुसलमान से काफिर बनाया है।

जब कथा समाप्त होगई और सब लोग चले गये तब मौलवी साहिब ने पंडित जी को धमकाया और कहा।-

पंडित जी ! जो हुआ सो हुआ, अब कल से कथा मतबांचो ? यहां से अपना पोथी पत्री उठा लेजाओ ! वरना-............

पंडित जी सीधे सादे थे। मौलवी साहिब को वे पहिले ही से जानते थे। बेचारे डर गये और मौलवी साहिब से कहा।

अच्छा मौलवी साहिब ! कल से कथा न बांचूगा, आप इतमीनान रक्खें।

[४]

दूसरे दिन कथा बंद होगई। बालकाण्ड समाप्त होचुका था। पंडित जी ने प्रातःकाल ही हवन करके दूसरे नगर का मार्ग पकड़ा।

रास्ते में शाह साहिब से भेंट होगई। शाह साहिब ने पंडित जी को पहिचान कर कहा –

'पंडित जी कहाँ चले आ रहे हो ? ज़रा उस दिलदार का पता तो देते जाओ।'

पंडित जी ने अश्रुपूर्ण नेत्रों से कहा–

शाह साहिब ! इस समय तो जान लेकर भागा जारहा हूं। ठहर जाने से पकड़े जाने की आशंका है वरना मैं अवश्य ही आपको प्यारे प्रभु का चरित्र सुनाता।

शाह साहिब सिद्ध फकीर थे उन्होंने कहा–

'पंडित जी ! डरो मत। यह असा (छड़ी) लो जब तुम्हारे पास कोई आवे और तुम्हें डर मालूम हो तो इसे पृथ्वी पर फैंकदेना यह अजदहा बनजायगी और इसके डर से सब भाग जांयगे। इसके बाद उस पर धूल डाल देना वह अपनी असली सूरत में आजायगी तुम इसे हाथ में लिये फिरना।

पंडित जी ! तुम तो दिलादार की हिकायत सुनाते हो। तुम्हें डर किसबात का है ? तुम बिलकुल मत डरा करो।

अहले दुनिया काफिराने मुतलकन्द,
रोज शब वो दर जक जको दर बकबकन्द।

अर्थात्

महा जाल जंजाल भयङ्कर भव में जौन फंसेरे।
महामूढ़ व्यर्थों को झक झक करते सांझ सवेरे॥

अच्छा ! अब ज़रा फिर ता समझा दो कि शाहजादे अवध कैसे 'हसीन' हैं।

बिचारे पंडित जी क्या करते पोथी खोलकर बैठ गये और रघुनाथ जी की अपार शोभा का वर्णन करके यह समझाने लगे कि जनकपुर की स्त्रियां किस प्रकार मोहित होकर उनके ऊपर निछावर होगई थी और धनुष यज्ञ के समय देश २ के राजा महाराजा किस प्रकार उनकी अतुलित छविपर मुग्ध होकर उनके हाथ बेदाम बिक गये थे। इन्हीं सब बातों का सविस्तार वर्णन करके पंडित जी रघुनाथ जी की प्रशंसा इस प्रकार करने लगे।

धरणी भार हरने, वही राम अब बने हैं।
पापों का घन उड़ाने, घनश्याम अब बने हैं॥
विष्णु ! वही विश्वम्भर ! वही नील-कण्ठधारी।
वही पार ब्रह्म ईश्वर ! वही राम हैं मुरारी॥

शाह साहिब मस्त होगये उन्होंने अमित आनन्द और उल्लास में भर कर कहा।

वाह ! पंडित जी ! वाह ! वाह ! खूब सुनाया।

अच्छा ! अब मांगो क्या मांगते हो।

पंडीत जी ने खूब सोच विचार कर तीन चीज़ें मांगी।

(१) मैं पुत्रहीन हूं। मेरे एक पुत्र होजाय।
(२) मेरी मृत्यु अनायास हो।
(३) और श्रीराम चन्द्र के चरणों में प्रीति हो।

शाह साहिब ने कहा।–

'अच्छा ! पंडित जी ! लो, दो वरदान अभी देता हूं। तीसरा जब तुम फिर मिलोगे और दिलदार की बातें सुनाओगे तब दूंगा।'

यही तो असली चीज़ थी। पंडित जी अपनी भूल पर बहुत पछिताये और कहने लगे कि मैंने पहिले यही क्यों न मांगा। अनन्तर कुछ साहस बटोर कर कहाः–

"शाह साहिब ! फिर मैं आपको कहाँ पाऊंगा ?"

शाह साहिब ने कहाः–

'यार के कूचे में। मेरा यार तुम्हें खींच कर

मेरे पास पहुंचा देगा।'

'अच्छा ! अब जाओ ?'

पण्डित टेकचन्द जी विदा हुये। शाह साहिब भी झूमते झामते अपना मस्ताना गीत गाते हुए यार के कूचे की तरफ चले। गीत यह था।

दिलदार यार प्यारे, गलियों में मेरी आजा।
आँखें तरस रही हैं, सूरत मुझे दिखा जा॥

[५]

पाँचवें महीने शाह साहिब अवध-धाम में पहुंचे और बाबर की मसजिद में उतरे। इतने दिन की प्रबल उत्कण्ठा के बाद इष्ट धाम में पहुंचने पर उन्हें जो असीम आनन्द प्राप्त हुआ उसका वर्णन कौन कर सकता है ? वे उसी अपार आनन्द में मग्न होकर इष्ट देव प्यारे श्रीरामचन्द्र जी की आराधना में लग गये। इतने में एक सज्जन वहां से निकले। उन्होंने शाह साहिब को अकेला देख कर कहा।

'शाह साहिब ! अकेले कैसे बैठे हो ?'

महात्मा यसाली का ध्यान भंग हो गया। उन्होंने किसी प्रकार अपनी विरह-वेदना को रोक और क्रोध को शान्त कर कहाः–

'अभी तक तो मैं अकेला नहीं था, अपने दिलदार के साथ मज़े उड़ा रहा था। हाँ, तुम्हारे बाजाने से अलबत्ता ध्यान टूट गया और मैं अकेला हो गया।'

यह उपदेश-भरे वचन सुनकर वह अत्यन्त लज्जित हुआ। हाथ जोड़ कर क्षमा मांगने लगा और प्रणाम कर चला गया।

[६]

अनन्तर महात्मा यसाली ने इष्ट धाम की परिक्रमा करने का विचार किया। भगवत्-भक्तों को यह कार्य कितना सुख कर होता है, सो तो कोई भक्त ही जानता है। आज कल के शौकीनों को इसका क्या पता ? मौलाना रूम साहिब ने फरमाया है।

न मन बेहूदा गिर्दे कूच, वा बाजार मी गरदम।
मज़ाके आशक़ी दारम, पये दीदार मी गरदम॥

अर्थात् मैं यों हीं अवध्य को भाँति गलियों और बाजारों में नहीं घूमता, मुझे प्रेम का चसका लग गया है, मैं प्रियतम प्रभु को खोजता फिरता हूं।

एक दूसरे सन्त का कथन हैः–

आँ ज़मीने कि निशाने कफ़ पाये तू बुवद।
सालहा सिजदए साहेब नज़रां खुआहिद बूद॥

अर्थात् प्रभुपद-अंकित भूमि की महिमा का क्या कहना है ! वह तो भगवत्-भक्तों की सदा वन्दनीया है।

यही सब सोचते और यह कहते हुएः–

'नेह सरोवर में धसि के कढ़िबो हंसि खेल नहीं है।'

शाह साहिब आनन्द पूर्वक अयोध्या जी की गलियों में विचरने लगे। उन दिनों अयोध्या जी में मन्दिर थोड़े ही थे परन्तु उनके भीतर उनका प्रवेश होना एक असम्भव बात थी। इधर प्रियतम के दीदार की लालसा, उधर पुजारियों की दुत्कार। इन दोनों प्रतिद्वन्द्वी स्थितियों के संघर्षण में विरही महात्मा जी के हृदय में दर्शन-लाभ की ज्वाला और भी ज़ोर से धधक उठी। उन्हें बड़ा दुख हुआ, परन्तु नियम है जो जिसको याद करता है वह भी उसको याद करता है। कहा भी हैः–

तुलसी ! कमलन जल बसे, रवि शशि बसे अकाश।
जो जाके मन में बसे, सो ताही के पास॥

औरः–

जिसको हम चाहें न चाहें क्या मजाल।
दिल से लेकिन उसको चाहा चाहिये॥

औरः–

असर है जज़्ब उल्फत में तो खिंचकर आही जावेंगे।
हमें परवाह नहीं, इसकी, अगर वह तन के बैठे हैं॥

और भी:-

अगर ऊ खुदास्त खुद आयद।

अर्थात्:-

यदि वह खुदा है तो खुद आयगा अन्त में जब महात्मा वसाली की बेचैनी बहुत बढ़ गई तब यह आकाश वाणी हुई।

'ऐ वसाली! जल्द आ? मैं तुझ से मिलने के लिये तड़फ रहा हूं।'

इस आकाशवाणी के सुनते ही महात्मा वसाली का शरीर पुलकित हो गया। आनन्द के मारे उनके नेत्रों में आंसू छलक आये और उनकी ज़बान से बरबस यह निकल पड़ा।

अय कि हरहेच जान दारी आ,
बुल अजब मंदि अम कि हरजाई।
सर्व रहित सब कर पुरवासी॥

[७]

अनन्तर महात्मा वसाली श्री सरयूजी के किनारे गये। विमल वारि को देखते ही प्रेम से परिपूर्ण हो गये। जल और थल की उन्हें सुधि नहीं रही। गुदड़ी पहने हुए ही बीच धारा में कूद पड़ा घाट पर लोग स्नान ध्यान कर रहे थे, यह देख उन्हें आश्चर्य हुआ। सबों ने जाना कि शाह साहिब डूब गये। कई मनुष्य झट पट कूद पड़े। स्वर्गद्वार घाट लछमन घाट आदि सब छान डाले परन्तु उनका पता न चला। आषाढ़ का महीना था सरयू जी बड़े वेग से बह रही थीं। सब लोग निराश होकर बैठ रहे। अन्त में एक पहर के पश्चात् वे गुप्तार घाट पर निकले। उनका सम्पूर्ण शरीर भीगा था, परन्तु गुदड़ी सूखी थीं।

सम्पूर्ण

महात्मा रामकृष्ण परमहंस के सदुपदेश

(विद्याभूषण पं० मोहन शर्म्मा, विशारद, सम्पादक 'मोहिनी')

कर्त्तव्यः-संसारी मनुष्य प्रायः सदैव तोते के समान राधाकृष्ण २ की रट लगाया करते हैं। किन्तु, जब चूहे को बिल्ली पकड़ती है तो उससे चूं चूं करने के सिवाय और कुछ नहीं बन पड़ता है। इसी प्रकार संसारी जन सुख और शान्ति के समय धर्म और कर्म की चर्चा किया करते हैं। परन्तु, वे विपत्ति के समय नितान्त, कर्त्तव्य-मूर्ख बन जाते हैं। उनसे उस अवस्था में विशेष कुछ नहीं बनता है।

× × × ×

वासनाः-जैसे गिद्ध चील इत्यादि नभचर पक्षी अन्तरिक्ष में बहुत ऊंची उड़ान करते हैं, परन्तु उनकी दृष्टि सदैव पृथ्वी पर गिरे हुए मांस आदि दुर्गन्ध युक्त पदार्थों पर लगी रहती है। यही अवस्था बड़े २ पण्डितों और विद्वान् पुरुषों तक की है, वे मत के समर्थन में शास्त्र के एक से एक बढ़ कर प्रमाण उपस्थित किया करते हैं-यह ठीक है: परन्तु उनका मन सदैव विषय वासना में आबद्ध रहने के कारण वे यथार्थ ज्ञान से कोसों दूर रहते हैं।

× × × ×

विवेकः-जिस प्रकार पंचाङ्गों में जल वृष्टि सम्बन्धी भविष्य वाणी लिखी रहने पर भी पंचांगों को निचोड़ने से एक भी बून्द पानी नहीं निकलता है; उसी प्रकार पुस्तकों में अनेक धर्म कथाएं और धर्मोपदेश लिखे रहने पर भी उनको बालो पढ़ जाने से ही कोई मनुष्य धार्मिक नहीं बन सकता;

वरन उनमें लिखे उपदेशों के अनुसार आचरण करने से ही सच्ची धर्म बुद्धि जागृत होती है।

× × × ×

बुद्धिः-वासना हीन मन सूखी आग काड़ी के समान है। सूखी आगकाड़ी एक ही बार घिसने से तुरन्त जल उठती है परन्तु हरी अथवा गीली आगकाड़ी सैकड़ों बार घिसे जाने से भी नहीं जलती। इसी भांति सरल, सत्यनिष्ठ और निर्मल चित्त मनुष्य में एक ही बार के उपदेश से ईश्वर प्रेम अथवा धर्म भावना उत्पन्न हो जाती है परन्तु विषयासक्त किम्वा दुर्व्यसनी मनुष्य को हजार उपदेश देने पर भी उसके मन पर कुछ प्रभाव नहीं होता है।

× × × ×

पापः-पाप और पारे को कोई भी मनुष्य पचा नहीं सका। यदि कोई मनुष्य गुप्त रीति से पारा खा जाय तो भी वह पारा उसके शरीर से एक दिन फूट निकलेगा। इसी के अनुसार एक न एक दिन पाप का फल पाप करने पर भी मनुष्य को अवश्य भोगना पड़ता है।

× × × ×

साधकः-साधक दो प्रकार के होते हैं। एक ज्ञानी, दूसरे भक्त। ज्ञानी साधक स्वावलम्बी हुआ करते हैं और पुरुषार्थ के द्वारा ईश्वर दर्शन का निरन्तर प्रयत्न किया करते हैं, तथा अन्त में भक्ति द्वारा अपनी आत्मा हरि चरणों में समर्पित करके निश्चिन्त होते हैं।

× × × ×

सिद्धिः-जिस मनुष्य को सिद्धि प्राप्त होती है अर्थात् जिसे ईश्वर का साक्षात्कार हो जाता है, उसके द्वारा कभी कोई अन्याय कर्म साधन नहीं हो सकता। जैसे कोई व्यक्ति नृत्य कला जानने वाला होता है तो नृत्य के समय उसके पैर बेताल में जमीन पर नहीं गिरते हैं।

× × × ×

संकीर्णताः-जिनकी भावना संकीर्ण होती है वे प्रायः अन्य धर्मों की निन्दा ही किया करते हैं। और केवल अपने आप के धर्म को सर्व श्रेष्ठ मानते हैं। परन्तु, जो सच्चे ईश्वर भक्त होते हैं, वे लगातार साधन भजन किया करते हैं। उनको व्यर्थ वाद विवाद करने की आवश्यकता नहीं रहती है।

× × × +

अहंः-इस धराधाम पर अधिकांश मनुष्य यह कहते रहते हैं कि हमारी अमुक जमीन है-यह हमारा घर है-यह हमारा खेत है। इस प्रकार से उन्होंने मकान खेत आदि बांध कर काफी जमीन घेर डाली है परन्तु फिर भी उनकी परिमित भूमि के ऊपर अनन्त आकाश विद्यमान है। उसे कोई भी घेर नहीं सकता। इसी प्रकार संसारी जन अज्ञानता के वशीभूत होकर अपने २ धर्म की श्रेष्ठता का डिम डिम पीटते हुए व्यर्थ की गड़बड़ मचाते रहते हैं। परन्तु जब वे सत्य ज्ञान को जान लेते हैं तब किसी प्रकार का पारस्परिक वादविवाद नहीं रह जाता है।

× × × ×

ईश्वरोपासनाः-सांसारिक कार्यों में लिप्त रहते हुए भी मनुष्य ईश्वराराधन कर सकता है। जैसे की भड़भूंजे की स्त्री एक हाथ से भाड़ भूंजती है और दूसरे हाथ से दानों को एकत्र करती जाती

है, और कोई ग्राहक हुआ तो उसके साथ बात चीत भी करती है किन्तु उसका ध्यान सदैव भाड़ की तरफ ही रहता है। यदि उसका थोड़ा भी ध्यान विचलित हो तो उसके दोनों हाथों का एक दम काम तमाम हो जाय। इसी प्रकार मनुष्य को संसार में रह कर सब काम सम्हालना ही चाहिये परन्तु चित्त को ईश्वर प्रत्यय में जोड़े रखना आवश्यक है। ईश्वर प्रत्यय से चित्त को दूर रखने में मनुष्य को अनेकानेक विपत्तियों का लक्ष्य बनना पड़ता है।

× × × ×

भक्तिः–जैसे व्यभिचारिणी स्त्री स्वजन-परिवार आदि के बीच में रह कर गृहस्थी के काम तो सम्हालती रहती है किन्तु उसका ध्यान अपने प्रेमिक की ओर लगा रहता है। वह निरन्तर उससे मिलने के लिये आकुल-व्याकुल रहती है इसी प्रकार तुम भी संसारिक कार्यों में लिप्त रहते हुए ईश्वर प्रत्यय को सदैव कायम रखो।

× × × ×

त्यागः–संसार में मनुष्य निर्लिप्त भाव से भी रह सकता है, जैसे की जल में कमल पत्र रहते हैं और वे जल से भीगते नहीं। इसी प्रकार त्यागी पुरुष संसार में रहते हुए उसकी मोह माया और ममता के बन्धनों में नहीं फंसते हैं।

× × × ×

अवतारः–सरिता में बड़े २ लकड़ों के उतराने पर मनुष्य उनपर बैठ कर उस पार चले जाते हैं, किन्तु क्षुद्र लकड़ी पर एक चिड़िया भी बैठती है तो वह सशरीर डूब जाती है। इसी उदाहरण के अनुसार जब अवतारी पुरुष जन्म ग्रहण करते हैं, इस धराधाम पर अवतरित होते हैं तब हजारों पापतापी व्यक्ति उनके आश्रय से भवसागर पार हो जाते हैं।

× × × ×

आकर्षणः–रेल का एंजिन स्वयं तो चलता है किन्तु अपने साथ दूसरे अनेकों डिब्बों को खींच ले जाता है। इसी के अनुसार अवतारी पुरुष हजारों स्त्री पुरुषों को अपने विकट प्रभाव से धर्म मार्ग पर खींच ले जाते हैं।

× × × ×

प्रीतिः–सन्तान न होने से अथवा धन सम्पत्ति प्राप्त न होने के कारण अनेक मनुष्य अश्रुपात करते रहते हैं। व्याकुल होते हैं, किन्तु ईश्वर प्राप्ति न होने के कारण अथवा पारब्रह्म-परमात्मा के प्रति भक्ति भाव न होने से ऐसे कितने मनुष्य हैं जो अश्रुपात करते और व्याकुल होते हैं।

× × × ×

मनः–जैसे सती स्त्री का मन पति-परम गुरु में, लोभी का मन धन में, और विषय मनुष्य का मन विषय वासना में लगा रहता है, उसी प्रकार भगवद्भक्तों को अपना मन भगवत्-चिन्ता में लगाना चाहिये। जिस समय भगवान् के प्रति मनुष्य के हृदय में ऐसी प्रीतिष्ठा उदय हो जाती है उसी समय सच्चिदानन्द भगवान् के पुण्य दर्शन सुलभ हो जाते हैं।

× × × ×

भ्रमणः–जब तक परम पिता परमेश का साक्षात्कार नहीं होता तब तक मनुष्य का मन भ्रमित रहता है। जैसे की भ्रमर जब तक कमल पर नहीं बैठता तब तक उसके चारों तरफ भिन

भिनाया ही करता है। किन्तु जब वह कमल पर बैठ कर अपनी पान-क्रिया आरम्भ कर देता है तब उसे सच्ची शान्ति मिल जाती है-उस समय उसके मुंह से शब्द तक नहीं निकलता है।

आओना मोहन !

(रचयिता श्रीमती व्रज कुमारी "प्रभाकर" आश्रम)

बंशी बजाओना जमुना के तीर मोहन ॥
सत्वर आओना भारत पै भीर मोहन ॥
चक्र चलाओना दस्यु पै वीर मोहन ॥
पतित उठाओना तब उर गंभीर मोहन ॥
संयम कराओना अब तप धीर मोहन ॥
आदर्श बनाओना प्रजा प्राचीर मोहन ॥
गीता सुनाओना जन उरमें पीर मोहन ॥
दर्श दे जिलाओना ज्यों मीन नीर मोहन ॥
अब बन्ध छुड़ाओना पिंजर में कीर मोहन ॥
विरह बढ़ाओना वह द्रौपदी चीर मोहन ॥
बन धन चराओना व्याकुल शरीर मोहन ॥
रास रचाओना ललना अधर मोहन ॥
नृत्य कराओना त्रिविध समीर मोहन ॥
धार बहाओना फिर दधि क्षीर मोहन ॥
पार कराओना जग के प्रतीर मोहन ॥
निज ज्योति जगाओना 'व्रज' उरमें पीर मोहन ॥

योग-साधन

(ले० श्री स्वामी शिवानन्द जी)

४३८. अपने हृदय में खूब आन्तरिक अवलोकन करके आत्मा रूपी अमूल्य मोती को खोज निकालो, और वह एक चित्त हो कर ध्यान लगाने से ही होता है।

४३९. आन्तरिक अवलोकन और ध्यान देने से यह पता चलता है कि "मैं अखण्ड हूं एक गुण हूं, ज्ञान हूं। मुझे मेरा अखण्डता से चिन्तन करो यही उपनिषदों का सार है और यही उपनिषदों के ज्ञान को तुम्हें बताने में समर्थ है। यही अज्ञान रूपी अन्धकार का नाश करने में काफ़ी है। अपने को चित्त शंका और अद्वैत सिद्धि की प्राप्ती में विक्षिप्त नहीं करो और नाहीं अधिक चिन्तन करो। तभी आप मुक्ति को युक्ति द्वारा प्राप्त कर सकते हो।

४४०. आप किसी मित्र या दीवार के सहारे से या इसके बिना ही थोड़े से समय के लिये शिरषासन करो और यह आपकी दृष्टि को तीव्र करेगा, स्वप्नदोष दूर हो जायेंगे और भूख अधिक लगेगी।

४४१. आप सर्वाङ्ग और मत्स्य आसन भी कर सकते हैं और यह भी दृष्टी और स्वास्थ्य के लिये लाभदायक है।

४४२. अगर आप इच्छा करें और आप के पास समय है तब आप प्रतिदिन शिरस, सर्वाङ्ग, मत्स्य, पश्चिमोत्तान और मयूर यह पांच आसन करें इन पांच का एक संग करना बड़ा लाभदायक है और मैंने सैंकड़ों मनुष्यों को यह आसन करने को कहा और जिन्होंने किया उन्हें हर बात में वृद्धि हुई।

४४३. प्राणायाम जप या समाधि के पूर्व करना बड़ा अच्छा है और यह ध्यान को बढ़ाने वाला है और यह सुस्ती और आलस्य को दूर करने वाला है और संयमी बनाने में भी सहायता देता है इसके साथ ही साथ हृदय में सत्व और ज्ञान पैदा करता है।

४४४. किसी से भी वृथा बात न करो हृदय को निशप्रयोजन सूचनाओं से मत दबाओ, और नाहीं किसी से अप्रिय शब्द कहो। अपनी वाणी पर पूर्ण अधिकार होना चाहिये यह दिल को धोका देने वाला अत्यन्त प्रबल अङ्ग है। और इससे वाणी का वश में होना मन का ही वश में होना है। मनुष्य एक सामाजिक जन्तु है वह संग और बातें करने का बड़ा इच्छुक है। अगर आप बड़े ऋषी या महात्मा बनने की इच्छा रखते हैं तो हमें इस प्रबल लहर के विरुद्ध ही चलना पड़ेगा और यही सिद्धी की सीढ़ी है। समाज और वार्तालाप को छोड़ कर परमात्मा का भजन करो।

४४५. निश्चय करके न्याय ही सत्य का दूसरा नाम है। इस से यह कहते हैं कि जो मनुष्य न्याय करता है सत्य बोलता है और जो सत्य बोलता है न्याय करता है। परन्तु इस तरह से दोनों बातें एक ही हैं क्योंकि एक स्वार्थी मनुष्य न्याय नहीं कर सकता है और इसले वह सत्य नहीं बोल सकता। सत्य ही हृदय की शुद्धता करता है।

४४६. सुत, दारा और लक्ष्मी यह तीन प्रकार की तृष्णा मनुष्य में है। जीव ही इन सब इच्छाओं का मूल कारण है अगर स्त्री, पुत्र और धन की प्राप्ति मुझे मिल जाय और यही मेरे सब से अधिक सुख का कारण है। अगर वह इनमें से एक को भी प्राप्त नहीं कर सका तो वह समझता है कि मेरा काम अभी अधूरा है और यह सब अज्ञान का कारण है। अगर एक मनुष्य मोक्ष का कांक्षी है उसे चाहिये कि इन तीनों तृष्णाओं का त्याग करे।

४४७. आप को यह तीन वस्तुएं अवश्य ध्यान में रखनी चाहिये, गाना, काम करना और सद्‌गुरुओं से जानने की इच्छा रखना राम और ओम् ऐसा शब्द गाओ। निष्काम कार्य करो। और पूछो मैं कौन हूं। गाना ही उपासना है कार्य ही कर्म योग है और यह पूछना कि मैं कौन हूं यही ज्ञान है।

४४८. पंच कृत्य ही एक साधन है जिस से पांच मूलों का मिश्रण करके ही स्थूल ब्रह्मानन्द प्राप्त होता है और यही पांच वास्तुओं का मिलाना कहा जाता है तन मात्रा ही तत्वों की सूक्ष्म अवस्था है और यही इनकी मूल अवस्था है और यह बहुत ही सूक्ष्म है।

४४९. तन मात्रा पांच हैं और यही स्थूल ब्रह्मानन्द और स्थूल जगत् के जन्म दाता हैं।

४५०. शब्द, वायू जल अग्नी और पृथ्वी यही पांच तन मात्राएं हैं।

४५१. यह किसी निश्चित मात्रा से आपस में मिली हुई हैं। प्रत्येक तन मात्रा दो बराबर हिस्सों में बटी है। प्रत्येक तन मात्रा का एक भाग वैसा ही रहता है। और दूसरा भाग चार भागों में विभाजित है। जल तन मात्रा का आधा भाग, आकाश तन मात्रा का चौथाई भाग और अन्य तीनों के चौथाई भाग इन सब का मिश्रण है। इस मिश्रण से स्थूल तत्व जल बन गया और नदी, झील इत्यादि में जो पानी है वह आकाश, वायू, अग्नि और पृथ्वी से मिल कर बना है। यह वैज्ञानिकों के लिये एक अद्भुत वस्तु है।

४५२. अपञ्च कृत्य पञ्च कृत्य का उलटा है और यही अमिश्रित दशा है और सूक्ष्म शरीर इन सूक्ष्म तत्वों का बना है।

४५३. पृथ्वी, जल और अग्नि यह तीनों मूर्त्तिमान तत्व कहलाते हैं और वायु और आकाश अमूर्त्तिमान।

४५४. बैल गाड़ी का पैया जैसे आरों पर टिका रहता है और आरे नाह पर, इसी भान्ति मन

प्रकृति पर और प्रकृति ब्रह्म पर टिकी है।

४५५. सन्ध्या दैनिक कार्यों में से एक है और (२) श्राद्ध कर्म ग्रहण इत्यादि नैमित्य कर्म हैं। (३) यह यज्ञ करो और आप को पुत्र प्राप्ति होगी यह विधि है। (४) निषेध, सुरापान पाप है। (५) प्रायश्चित्त

४५६. दूसरी प्रकार की कर्म श्रेणी इस प्रकार है:—

(क) सञ्चित कर्म, (बहुत से जन्मों के कर्म) यह ज्ञान से नाश हो जाते हैं।

(ख) प्रारब्ध, कर्म जिन के कारण हमें जन्म लेना पड़ा और जिनके फल आज हम भुगत रहे हैं।

(ग) आगामी कर्म जो आज कल आप कर रहे हैं यह भी सञ्चित कर्मों में जमा हो जाते हैं।

४५७. गीता को दृष्टि कोन में रखते हुए इन की श्रेणियां।

कर्म, अकर्म, विकर्म (धर्म विरुद्ध) यह तीन हैं। गीता के अनुसार प्रत्येक कार्य कर्म कहाता है। परन्तु जैमनी की मीमांसा के अनुसार अग्नि होत्रादि ही कर्म हैं गीता में यह अति गूढ़ता से बताये गये हैं।

४५८. कर्मों की दूसरी जाति भी है और वह ब्रह्म के आदि कर्म हैं। उसने विचारा और तप किया जिससे माया में थरथरी पैदा हुई और जिससे यह संसार बना। बस यही आदि कर्म है।

४५९. पत्थर में नाही तो आनन्द शक्ति है और नाही चित्त शक्ति है और इसी कारण से इसे जड़ कहा गया है।

४६०. आकाश में शून्यशक्ति है, वायु में चालन शक्ति है, अग्नि में दाहन शक्ति है, पानी में बहने की शक्ति है और पृथ्वी में सहन शक्ति है। बस यही पांचों शक्तियाँ माया की पञ्चशक्ति कहलाती हैं।

४६१. कर्म प्रत्येक समय में करने चाहिये परन्तु इनका फल प्रारब्ध पर ही छोड़ देना चाहिये। जैसे आप बीमार होते हैं और चिकित्सक से जाकर दवा लाते हैं मगर उस दवा के खाने पर भी अच्छा होना या न होना प्रारब्ध के अधिकार में है।

३६२. प्रत्येक नाम और रूप उस परमात्मा का ही है। इस संसार रूपी नाटक में वह सर्व शक्तिमान एक भंगी का पार्ट करता है और साथ ही साथ एक राजा का भी काम करता है और उसके सब कार्य करता है। कहाँ छोटापन है और कहां बड़प्पन है? यह धोखा ही है। आप क्यों झगड़ते और लड़ते हैं। कौन जाति से बाहर निकला हुआ है? जो परमात्मा को भूल गये हैं और इसकी उपस्थिति नहीं मानते वही पतित हैं। और जो अपने पड़ौसी से डाह करते हैं वही सच्चे पतित हैं। और जो क्रोधी और इच्छुक हैं वही यथार्थ में पतित हैं।

४६३. एक रस भक्ति पैदा करो। शिव और हरि सब एक हैं। कृष्ण और राम एक हैं।

४६४. जैसे सूर्य अपनी किरणें फैंकता है वैसे ही इस निर्गुण ब्रह्म ने इस संसार को बनाया है। जिस प्रकार सूर्य दिन के अवसान पर अपनी किरणों को समेट लेता है उसी प्रकार निर्गुण ब्रह्म प्रलय के समय सब संसार को अपने अन्दर समा लेता है।

४६५. कामनायें ही संसारिक रूप में जीवन की पहिली नींव है। पहिला स्थान सविकल्प समाधि है। और दूसरी मंजिल निर्विकल्प समाधि है और तीसरी मञ्जिल सहज-समाधि है और यही जीवन मुक्ति है। इस पर चढ़ने का जीना तीन पौड़ी श्रवण मनन निदिध्यासन है श्रवण करना, सोचना

और ध्यान करना) जिससे तुम ब्रह्म तक पहुंच सकते हो।

४६६. कमरे की दीवार धूप और स्याही से खराब हो गई परन्तु कमरे का आकाश जैसे का तैसा ही है। इसी प्रकार आत्मा भी निर्लेप रहती है। अन्तःकरण, दो बातें सुख और दुःख, प्रेम और घृणा का ज्ञान रखता है वही महसूस करता है।

४६७. सांप के दांतों में विष है पर वह सांप को नहीं मारता परन्तु दूसरों को ही मारता है। इसी प्रकार सुख और दुःख पाप और पुण्य आत्मा को प्रभावित नहीं करते।

४६८. संसार के तीन रूप हैं (१) नाम (२) रूप (३) और कर्म्म।

४६९. सूर्य कब निकलता है और कहां छुपता यह प्राणों से निकलता है और प्राणों में ही छुप जाता है। प्राण ही ज्येष्ठ और श्रेष्ठ है परन्तु जिस समय ब्रह्म से इसकी तुलना करते हैं तब यह जड़ है और कुछ अर्थ नहीं रखता है।

४७०. संसार के सब कार्य काल, कर्म और स्वभाव के अनुसार ही होते हैं।

४७१. तुम अपने मित्रों को उंगली से नहीं दिखा सकते कि यह आत्मा है क्योंकि आत्मा अवि-षय, अदृश्य, मन और वचन से भी परे है। अगर आत्मा आंखों से देख गई तो वह आत्मा नहीं है। यह अपरिमित है। और फिर विटप के सदृश स्थूल वस्तु हो जाती है। यह अनुभव गम्य और ध्यान गम्य है।

४७२. वेदान्त आपके कपड़ों को बदलना या आश्रम को बदलना नहीं चाहता। और नाही किसी वस्तु को छोड़ने की आज्ञा देता है परन्तु तुम्हारी मानसिक धारना को सुधारना चाहता है। यह आपके अहंत्व और ममत्व को बदलना चाहता है आप जब चाहें नगर में या शान्त गुफा में रहें कोई बात नहीं। क्या आप मेरी बात को समझे?

४७३. जो रूप आप एक स्त्री में देखते हैं वह निश्चय से परमात्मा का ही रूप है आप इस भान्ति से अपने मानसिक विचारों को बदलो। तब आपमें आश्चर्य भावना प्रशंसा भावना और भक्ति यह तीनों स्वयं ही पैदा हो जाँयगी। और फिर नाम चेष्टा स्वयं ही दूर हो जायगी। स्त्री के रूप की प्रशंसा करने में कोई हानि नहीं है और आप गुलाब के फूल की भान्ति वर्णन कर सकते हैं। जिस समय कोई वस्तु आपके दिल को लुभावे तब आप को यह सोचना चाहिये कि यह क्यों मेरे दिलकों लुभाती है और इसके लुभाने वाला कौन है। बस उसी समय आपको प्रतीत होगा कि यह है ईश्वर।

४७४. विज्ञान अकेला ही आपकी आत्माको उन्नति के स्थान पर पहुंचा सकता है। ऊंचे सूक्ष्म ज्ञान और कल्याण का देने वाला है। सिद्धान्त को एकाग्र चित और ध्यान लगाकर अभ्यास में लाना चाहिये।

४७५. आपको आत्मिक अभ्यास उत्साह और उद्योग करना आवश्यक है केवल वर्तालाप से कभी नहीं बनता। आप को अपनी सांसारिक प्रकृति ही बदलनी चाहिये। आपको उस पक्षी की भान्ति जो तिनकों और मिट्टी से सागर को भरने का प्रयत्न करता था, धैर्य और उद्योग के साथ आपको तप करना चाहिये आपको पुरा २ विवेक वैराग्य और विश्वास होना चाहिये।

४७६ उन संकल्पों को जो दिल, दिमाग और शरीर तीनों को हानि कारक है दूर हटा दो अपनी आत्मा का वार वार चिन्तन करो, और वार वार पूछो कि मैं कौन हूं।

४७७. एक क्षण भी मत खोओ। समय

अमूल्य है। अपने पौरुष को नष्ट मत करो। परमात्मा को जानने में देर करना मृत्यु के मुख में जाना है। जागो, उठो, कार्य करो, धैर्य से कटिबद्ध होकर अपने आन्तरिक मनो विकार, इन्द्रियों को अहङ्कार को, वासनाओं को और दुष्ट संस्कारों को मारो। अपनी आत्मा को हमेशा आनन्दित रक्खो। अगर आप अपने साधन में तत्पर हैं तो मैं आप को विश्वास दिलाता हूं कि आप अपनी आत्मा को दो ही वर्ष में प्राप्त करलेंगे।

भजन

गहरो करके नीम खुदाई ऊपर मण्डप छाये।
मार्कण्डेय ते को अधिकाई जिन तृण धर मूंद बलाये
हमारी कर्ता राम सनेही।
काये रे नर गर्व करत हो विनश जाय झूठी देही॥
मेरी २ कौरव करते दुर्योधन सो भाई।
बारह योजन छत्र चले था देही गिरजन खाई॥
सर्व सोने की लंका होती रावण से अधिकाई।
कहा भयो दर बान्धे हाथी क्षण में भई पराई॥
दुर्वासा सौं करत ठगौरी यादव यह फल पाये।
कृपा करि जन अपने ऊपर नामदेव हरि गुण गाये॥

२

हमसर दीन दयाल न तुमसर अब पतियार क्या कीजै।
वचनों तोर मोर मन मानै जन को पूरण दीजै॥
हौं बल २ जाउं रमय्या कारण कवन अबोल।
बहुत जन्म बिछुरे थे माधव इह जन्म तुम्हारे लेखे॥
कहै रामदास आस लग जीवो चिर भयो दर्शन देखे।

३

धूप दीप घृत साज आरती,
वारन जाऊं कमला पति।
मंगला हरि मंगला॥
राजा नित मंगल राम राय को,
उत्तम दियरा निर्मल बाती।
तुही निरंजन कमला पती॥
रामा भक्ति रामनन्द जाने,
पूरण परमानन्द बखाने।
मदन मूरति भय तार गोविन्दे,
सैन भणे भज परमानन्दे॥

४

कायो देवा कायो देवल कायो जंगम जाती।
कायो धूप दीप नैवेद्य कायो पूजो पाती॥
काया बहु खण्ड खोजते नव निध पाई।
ना कछु आयबो ना कछु जायबो रामकी दुहाई॥
जो ब्रह्माण्ड सोई पिण्डे जो खोजे सो पावे।
पीपा प्रणवे परम तत्व है सत्गुरु होय लखावे॥

५

कहीं कहा अपनी अधमाई॥
उरझ्यो कनक कामिनी के रस,
नहीं कीरति प्रभु गाई॥
जग झूठे को सांच जानके,
तासौं रुचि उप जाई॥
दीन बन्धु सिमरो नहीं कबहूं,
होत जो संग सहाई॥
मगन रहो माया में निशिदिन,
छुटी न मन की काई॥
कहै नानक अब नाहीं अनत गति,
बिन हरि की शरणाई॥

६

मैं अन्धरे की टेक तेरा नाम खुद कारा॥ टेक॥
मैं गरीब मैं मिस्कीन तेरो नाम है अधारा॥

करीमा रहीमा अल्लाह हैं तू गनी।
हाजरा हजूरां दर पेशतो मनी॥
दरयाव तू दिहन्द तू विस्यार तू धनी।
देही नेही एक तू दिगर को नहीं॥
तू दान तू बीना मैं बिचार क्या करी।
नामेचे स्वामी बख्शिन्द तू हरी॥

७

बाजीगर जैसे बाजी पाई, नाना रूप भेख दिखलाई।
स्वांग उतार थम्यो पासारा,
तब राको एकं कारा॥
कवन रूप द्रष्टयो नशायो,
कतहीं गयो वो कतते आयो॥
जलते उठहीं अनीव तरंगा,
कनक विभूषण किये बहुरंगा॥
बीजते जो देखयो बहु प्रकारा,
फल पाके ते एकंकारा॥
सहस घटा में एक अकाशा,
घट फूटे ते वही प्रकाशा॥
भ्रम लोभ मोह माया विकार,
भ्रम छूटे ते एक आकार॥
यह अविनाशी बिनशत नाहीं,
नाको आवे नाको जाहीं॥
गुरु पूरे हौं मैं मल धोई,
कहु नानक मेरी परम गति होई॥

८

जामें भजन रामको नाहीं,
ते नर जन्म अकारथ खोयो यह राखौ मन माहीं॥
तीरथ करे बरत पुनि राखै,
नहि मनुवा बस जाको।
निष्फल धर्म ताहि तुम मानो,
सांच कहत मैं याको॥
जैसे पाहन जल में राख्यो,
भेदै नहीं तेही पानी।
तैसे हीं ताहि बिखानो,
भक्ति हीन जो प्राणी॥
कलि में मुक्ति नामते पावत,
गुरु यह भेद बतावै।
कहै नानक सोई नर गरुवा,
जो प्रभु के गुण गावै॥

९

राखि लेहुं हमते बिगरी॥
शील धर्म भक्ति ना कीनीं,
हौं अभिमान टेढ़ पगरी॥
अमर जान संची यह काया,
यह मिथ्या काची गगरी॥
जिनही निवाज साज हम किये,
तिनही बिसार अवर लगरी॥
सन्धी की तोहि साथ नहीं कहियो,
शरण परे तुमरी पगरी॥
कहै कबीर यह बिनती सुनियो,
मत घालो यमकी खबरी॥

१०

सावन आयो अली अजहुं न आये हरी॥
द्रुम बल्ली सब हरी २ मैं अली नांह हरी।
हरी २ चहुं दिशि दीसत आवत नाह हरी॥
देख अषाढ़ के प्रथम पयोद हियमें हूक धरी।
अब सावन घन घोर घटा उमड़त नभ में घिरी।
भादौं कारी रैन देख के कैसे तब मैं करूं अरी।
चंच चूमत बिज्जु छटा मोय तासो मैं पीरी परी॥
कहैं 'ब्रज' अब बिरहन को नाही होवत कुशल घरी।
घररर २ मेघनाद अब बिरहन पै हत गाज परी॥